वैदिक धर्म

पौष सं. २००२
फर्वरी १९४६

विषयसूची।

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

वार्षिक मूल्य
म. ऑ. से ५) रु.; वी. पी. से ५।≈) रु.
विदेशके लिये १५ शिलिंग।
इस अंकका मू. ॥) रु.

क्रमांक ३१४

वेदकी संहिताएं।

प्रथम और द्वितीय भाग तैयार हैं, तृतीय भाग छप रहा है।

आज वेद की जो संहिताएँ उपलब्ध हैं, उन में प्रत्येक देवता के मन्त्र इधरउधर बिखरे हुए पाये जाते हैं। एक ही जगह उन मन्त्रों को इकट्ठा करके यह दैवत-संहिता बनवायी गयी है।

दैवत-संहिता।

दैवत-संहिता-प्रथम भाग।

१ अग्निदेवता	मन्त्र	२४४३	पृष्ठसंख्या	१४६
२ इंद्रदेवता		३३६३	,,	१७६
३ सोमदेवता		१२६२	,,	१५०
४ मरुद्देवता		४६४	,,	७१

दैवत-संहिता-द्वितीय भाग।

५ अश्विनौ	मन्त्र	६८९	पृष्ठसंख्या	१११
६ आयुर्वेद प्रकरण		२३४५	,,	२७१
७ रुद्र		२२७	,,	६४
८ उषा		१९४	,,	४०
९ अदिति-आदित्य		११३७	,,	१५६
१० विश्वे देवा.		१३१०	,,	११६

इस में प्रत्येक देवताके मूल मन्त्र, पुनरुक्त मन्त्रसूची, उपमासूची, विशेषणसूची तथा अकारानुक्रम से मन्त्रोंकी अनुक्रमणिका का समावेश तो है, परन्तु कभी कभी उत्तरपदसूची या निपातदेवतासूची इस भाँति अन्य भी सूचीयाँ दी गयी हैं। इन सभी सूचीयों से स्वाध्यायशील पाठकों को बड़ी भारी सुविधा होगी।

संपूर्ण दैवतसंहिताके इसी भाँति तीन विभाग होनेवाले हैं और प्रत्येक विभाग का मूल्य ६) रु तथा डा० व्य० १॥) है। पाठक ऐसे दुर्लभ ग्रन्थ का संग्रह अवश्य करें।

चार वेद

१ ऋग्वेद (द्वितीय संस्करण)	६)	डा०व्य० १॥)	
३ सामवेद	३॥)	डा०व्य० ॥)	
२ यजुर्वेद	२॥)	,, ,,	॥)
४ अथर्ववेद (द्वितीय संस्करण)	६)	,, ,,	१)

इन चारों संहिताओंका मूल्य १८) रु और डा० व्य० ३) है अर्थात् कुल मूल्य २१) रु. है। परन्तु पेशगी म० आ० से सहूलियतका मू० १८) रु० है। इसलिए डाकसे मंगानेवाले मूल्य १८) अठारह रु० पेशगी भेजें।

यजुर्वेदकी संहिताएँ।

५ काण्व संहिता	४)	॥)
६ मैत्रायणी संहिता	६)	१)
७ काठक संहिता	६)	१)
८ तैत्तिरीय संहिता (कृष्ण यजुर्वेद)	६)	१)

वेदकी इन चारों संहिताओं का मूल्य २२) है, डा० व्य० ३॥) है अर्थात् २५॥) डा० व्य० समेत है। परन्तु जो ग्राहक पेशगी मूल्य भेजकर ग्राहक बनेंगे, उनको ये चारों संहिताएं २२) रु० में ही जाएंगी। डाकव्यय माफ होगा।

९ यजुर्वेद- सर्वानुक्रम	मू. १॥)	।=)
१० यजुर्वेद- पादसूची	१॥)	।=)
११ ऋग्वेद परिशिष्ट (मंत्रसूची, सर्वानुक्रम इ०)	५)	॥)

मंत्री, स्वाध्याय-मण्डल, औंध, [illegible]

वैदिकधर्म

क्रमांक ३१४

वर्ष २७ | पौष, विक्रमीय संवत् २००२, फर्वरी १९४६ | अङ्क २

सबसे श्रेष्ठ प्रभु !

न त्वदन्यो कवितरो, न मेधया धीरतरो, वरुण स्वधावन् ।
त्वं ता, विश्वा भुवनानि वेत्थ, स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥

(अथर्व० ५।११।४)

"हे अपनी निज धारणाशक्तिसे युक्त प्रभो! तुझसे बढकर कोई भी दूसरा अधिक ज्ञानी नहीं है, तुझसे बढकर अधिक मेधावान् अथवा अधिक धीर अर्थात् धैर्यवान् भी कोई नहीं है। तू सब भुवनोंको यथावत् जानता है, इसलिये प्रबल बुद्धिवान् कुशल अथवा कपटी मनुष्य भी उस तुझसे डरता है।"

ईश्वर (स्व-धा-वान्) अपनी निज धारणा-शक्तिसे युक्त है, यह शक्ति उसकी निज शक्ति है, किसी दूसरे से प्राप्त हुई नहीं है। यह प्रभु स्वयं ज्ञानी, धैर्यशाली और मेधावान् है। इससे बढकर कोई भी दूसरा अधिक ज्ञानी, अधिक मेधावान् अथवा अधिक धैर्यशाली नहीं है। इस प्रभुका ज्ञान इतना विशाल है कि यह सब भुवनों-स्थिरचर वस्तुजातको- यथावत् जानता है, इसको अज्ञात ऐसा यहां कुछ भी नहीं है। गुप्तसे गुप्त भी वस्तुको वह यथावत् जानता है। इसीलिये उससे छुपकर कुछ भी नहीं रहता। यही कारण है कि सब लोक इससे डरते रहते हैं। अत्यंत कुशल सामर्थ्यवान् मनुष्य भी इससे डरता रहता है, क्योंकि उसकी सब बात प्रभु पहिलेसेही जानता रहता है।

धार्मिक संस्थाओंकी सूची

धार्मिक संस्थाओंकी सूची बनानेका विचार है। बहुतसे धार्मिक वृत्तिके धनाढ्य लोग ग्रंथोंका दान करके अथवा अन्य रीतिसे धार्मिक संस्थाओंकी सहायता करना चाहते हैं। वे हमसे सुयोग्य संस्थाओंकी सूची मांगते हैं, इसलिये हम ऐसी सूची बनाना चाहते हैं। अतः स्थान स्थानके धर्म प्रचारका कार्य करनेवाली संस्थाओंको उचित है कि वे अपना कार्य तथा उद्देश्य लिखकर हमारे पास भेज दें।

एकवार एक धनाढ्य पुरुषने अग्निहोत्रियोंको दान देना चाहा। इस कारण भारतवर्षके करीब ७०० अग्निहोत्रियोंकी सूची बनायी। उस धनी पुरुषने इनको अच्छा दान दिया। एक सेठजीने धार्मिक संस्थाके संचालक विद्वानोंको वेदोंके पुस्तक देनेका संकल्प किया। इस समय ऐसे करीब ५०० विद्वानोंकी सूची बनायी, जिनको चारों वेद बिना-मूल्य दिये गये। ऐसा बारबार हमें अवसर आता है, इसलिये हमारे पास सब धार्मिक संस्थाओंकी अच्छी सूची रही, तो उससे उन संस्थाओंको बडा लाभ होनेका संभव है। इसलिये धार्मिक संस्थाएं अपने कार्यका वर्णन हमारे पास भेज दें–

१. गीता-प्रचार-समिति, जहां गीताका अध्ययन-अध्यापन, पठन-पाठन, प्रचार, प्रवचन, आदि किया जाता हो, जहां गीताके ग्रंथ प्रकाशित होते हों, अथवा गीता-प्रचारका या अन्वेषणका कार्य होता हो, वह संस्था अपने कार्यका ब्यौरा हमारे पास भेज देवे। संस्थाकी रजिष्ट्री की गयी है या नहीं, अध्यक्ष और मंत्री कौन है, वार्षिक व्यय कितना किया जाता है, सार्वजनिक उत्सव आदि होते हों तो उसका वृत्त भेजना उचित है।

२. वेद-विद्यालय, ब्राह्मविद्यालय, आचार्यकुल, गुरुकुल, ऋषिकुल, उपनिषद्विद्यालय, संस्कृत विद्यालय, जहां वैदिक, आर्य या हिंदुधर्मकी शिक्षा दी जाती है, धर्म-जाग्रति की जाती है, उस संस्थाका ब्यौरा।

३. आर्य-समाज, सनातन-धर्म-सभा, हिंदुधर्मसभा, शुद्धि-सभा, वर्णाश्रमसंघ इत्यादि संस्थाएं अपने वृत्तको हमारे पास भेज देवें।

संस्थाका नाम, संचालकका नाम, संस्थाका कार्यक्षेत्र, डाकखाना (अंग्रेजीमें), जिला, प्रांत, रेलका स्टेशन (अंग्रेजीमें), रेलका नाम, स्टेशनसे कितनी दूरीपर स्थान है, इत्यादि बातें अवश्य लिखी हों।

सब वृत्त संक्षेपसे लिखा हो, सुपाठ्य लेख हो। जो संस्थाएं इस तरह अपना वृत्त भेजेंगी, वे यह न समझें कि इससे तुरन्त ही अपनी संस्थाका लाभ होगा। जब लाभ होनेका संभव होगा, तब अवश्य लाभ होगा ही।

अपनी संस्थाका वर्णन भेजनेके समय अपने ग्राममें जो दूसरी धार्मिक संस्थाएं होंगीं, उन सबकाभी वर्णन संक्षेप से भेज दें।

(संपादक)

भगवद्गीता–पुरुषार्थबोधिनी भाषाटीका

स्वाध्यायमण्डलके द्वारा भगवद्गीताकी पुरुषार्थबोधिनी भाषाटीका प्रसिद्ध हुई है। इसकी मांग भी बहुत बढ रही है। अब इसके अनुवाद अनेक भाषाओंमें प्रसिद्ध हो गये हैं और हो रहे हैं–

१. मराठी, हिंदी और अंग्रेजी भाषामें अनुवाद स्वाध्यायमण्डल, औंध (जि. सातारा) से मिलेंगे,

२. गुजराती भाषाका अनुवाद स्वाध्याय-मण्डल, गुजरात शाखा, रावपुरा, बडौदासे मिलता है,

३ कानडी भाषाका अनुवाद श्री. वं. बा. जोशी, सरस्वती-निकेतन, सावनकेरी, धारवाडसे मिलेगा,

४ मल्याळ और बंगला भाषाके अनुवाद, मद्रास और कलकत्तामें प्रकाशित होंगे, इनका मुद्रण शुरू होने पर उनका पता दिया जायगा।

(प्रबंधकर्ता)

पूर्वदेव और देव

[असुर या देव]

(लेखक- पं० प्रभुदयाल, वैदिक हिस्टारिकल रीसर्च स्कालर, त्वष्पाम (हिसार)

वेदमें यह विषय स्पष्ट रूपसे खोला गया है कि असुर और देव " एक " नामके प्रजापतिके पुत्र हैं। पूर्वदेव (असुर) बडे थे, और वह प्रथम राजा थे। अथवा पूर्वदेव पहले देवता थे, जिनके यहां सर्व प्रथम राजा और सम्राट् हो चुके थे और यह देश भारत-हिरण्यमयाना-सप्तसिन्धु-तथा द्युलोक व स्वर्ग सारे धाम उन्होंने रचे थे। उनको मायावी=कारीगरीमें निपुण होनेसे ही यह नाम दिया गया है।

त्वष्टा=सविता या पुरुष-विश्वकर्मा-सहस्रनाम इन वंशोंके थे। इन्होंने इस देशको बसाया और सारी विद्यायें तथा सभ्यतायें व कलाकौशल आदिका निर्माण किया। यह बहुत ही अमीर व विलासिताप्रिय और धनरत्नोंके धनी हो गये थे। इनके बनाये शस्त्र जगत्‌भरमें नामी थे, जो महाभारत-कालमें भी वानरध्वज रथ, गांडीव धनुष् तथा गदा और अक्षय तूणीर वरते आते रहे थे। यह सारे शस्त्र वरुण=त्वष्टाके बनाये हुए थे। इससे ज्ञात है कि ' देवों ' के पास ' खांडव वन ' घटनाके समय भी ऐसे शस्त्र नहीं थे। तभी वह कृष्ण और अर्जुनसे हारकर उत्तर पर्वतोंमें भाग गये थे। (महाभारत)

एक समय आया कि इनके दो दल हो गये थे, झगडा राज्य-विभाग-सम्बंधी था। इनके परस्पर घोर युद्ध होते रहे। परन्तु पूर्वदेव ही जीतते रहे। अन्तमें देवोंका राजा इन्द्रने त्वष्टा-पुत्र 'वृत्रदेव' को सन्धि-कर लेनेपर मौका पाकर-धोकासे घातरूपमें धावा कर मार दिया।

तबसे असुर हार गये और इनके छोटे भाई राजा हो गये। इनका नाम केवल ' देव ' हुआ, क्योंकि यह पूर्वसमयके राजा न होकर, पीछे बने राजा थे। राजा देव कहाने लगे। पूर्वदेववंश यहांसे असीरिया-मिस्र-यूनान-ईरान-बिबलोनिया आदि एशिया और योरुपके देशोंमें फैल गये, जहां इनके प्रथमसे उपनिवेश और राज्य थे और कुछ वंश यहां भी हैं, जो आज हमें यहां मिल रहे हैं। क्योंकि प्रथम ' पितर ' (पिता) पूर्वदेव ही थे। उनके वंशज आजके भारतीय हैं।

परस्पर 'एक' कुलके भाइयोंने लडते भिडते बुरा भला कहा और देवोंको पूर्वदेव ' शैतान ' कहते रहे और ' देव ' पूर्व-देवोंको शैतान (शरारती) कहने लगे। इसका नमूना हमें ' वेद ' और 'जन्द' में मिलता है। यह स्वाभाविक घटना थी कि दो भाई लडाई झगडेके समय एक दूसरेको बुरा कह देते।

'पूर्वदेवाः '– अमरकोशमें असुर २६ नामोंमें 'पूर्वदेवाः' लिखा है। अतः असुर ' पूर्वदेव ' थे। वेदोंमें भी यही ईशारा अनेक जगहपर मिलता है। पूर्वे देवाः। पूर्व-युगे। पूर्वे ऋषिः-पूर्वकल्प-पूर्वचित्ति-पूर्वे पितरः इत्यादि। वेदोंमें जहां 'पूर्व समय' का वर्णन आता है, वह सब पूर्वदेवोंका ही वर्णन होता है।

सुरद्विष्-देवशत्रु-देवारि-×इन्द्रशत्रु। ये नाम पूर्व-देवोंके वेदोंमें मिल रहे हैं, जिनसे यह प्रमाणित हो रहा है कि इन दोनों ' एकदेववंशी ' भाईयोंका द्वेष हो गया था और झगडा राजबांटका था।

दानवारि-वृत्रघ्न यह नाम देवोंके तथा ' देवराज इन्द्रके ' वेदोंमें सर्वत्र विख्यात हैं।

द्यौ पिता-पृथिवी माता। द्यौ=त्वष्टा सर्व देवोंका पिता हम सबका पिता है जिसे ' एकदेव ' कहा गया है। अर्थात् सबसे पहिला देव (ज्येष्ठ ब्रह्म) है। पृथिवी-आदिति-वाक्-अनेक नामोंसे वर्णित-वही दिति है, जिसके पुत्र ' दैत्य ' कहलाये। वही दिनो=दिन अर्थात् उषा है, जिसके पुत्र ' दानव ' कहे गये हैं। पश्चात् वही अदिति हो गई, तो उसके पुत्र 'आदित्य-देव ' कहे गये, जो देवमाता कही जाने लगी।

दिति-निर्ऋति-आदिति

(१) दितेश्च वै सोऽदितेः ॥ (अथ. १५।६।२)

× देवारीका विकृत दुकहरी नामका एक ग्राम त्वष्पामसे ३ कोसपर है। देवरिया (यू. पी.) का स्थान भी यही संकेत करता है।

(२) दितेः पुत्राणामदितेः (अथ. ।७।७।१)

(३) दितिश्चादितिश्च शीर्षकपाले ।

संवत्सरः शिरः । (अथ. १५।१८।५)

(४) अदितिः पञ्चमी निर्ऋतिः पञ्चमी ।

दिति पहला नाम था। पश्चात् वही अदिति-जो दिति नहीं रही, अदिति आदित्योंकी माता कही गई है। (१) दिति है सो ही अदिति है। (२) दिति-पुत्र दैत्य कहे गये। (३) दिति और अदिति शिर और खोपरी समान है। शिर संवत्सर व्रात्य राजा ज्येष्ठराजका है। अर्थात् दिति-अदिति एकके नाम हैं। (४) ' अदिति ' पञ्चमी तिथिकी देवता है । निर्ऋति भी पंचमी-तिथि की देवता है। अतः 'एक' के नाम हैं।

ऋग्वेदमें असुर शब्द

ऋग्वेदमें १०५ बार असुर शब्द आया है। ९० बार वह पराक्रमी और बलवान्का अर्थ देता है। केवल १५ बार वह ' देवशत्रु ' नाम तथा अर्थ प्रकट करता है। अतः स्पष्ट है कि यह पश्चात् कालके काव्यमें तथा बहुत थोडे अंशमें शत्रुभावको बताता है । अथवा जो भूली हुई घटनाके रूपमें दिखाई पडता है । अर्थात् १०५ बारके आगे १० वें भागमें वह निराला रहता है ।

प्राणो वा असुः ॥ (शत. ६।६।२।६) असु = प्राणका नाम है। असुर=प्राणपति-प्राणीमात्रका पति वा स्वामी होता है। प्राणोंका ' रक्षक ' पिता वा राजा, शत्रुको उठाकर फैंकनेवाला ' असुर ' बहुतही उत्तम नाम था जो ' पूर्वदेव ' कहाता था। अतः मैं सबसे पहिले एक ज्येष्ठ ब्रह्मको जो पूर्वदेव=असुर है, वेदानुसार अपना पिता व पितामह स्वीकार करता हूं। जिसकी प्रजायें यह सारा भारत ' असुर ' हैं। देव तो पश्चात्का रखा हुवा नाम है। हमारा प्राणसे भी प्रिय ' असुर ' पिता ' त्वष्टा '-सविता सबका पिता है।

यदि किसी समय परस्परके विवादके कारण एक वंशके प्यारे भ्राता लडते झगडते बुरा शब्द बोल चुके हों, तो यह कौन सभ्यता है कि आज हजारों वर्षोंके बात जानेपर भी अकारण जब कि आज हमारे सम्मुख कोई झगडा राज तथा जानपदादिका नहीं है, क्यों हमारे भाईयों तथा पिता-पितामह-वंशको शत्रुताके साथ हमें दिखाया जाता है ? वेदके नामपर ऐसा क्यों हो रहा है ? आज तो बिछडोंको ढूंढकर मिलाया जानेका समय है। हमारे भारतीय नेतागणने हिन्दु नामको विशाल बनाने का प्रस्ताव करके जापान तथा बौद्धोंको हिन्दुसमुदायके अन्तर्गत रख लिया है। अतः वेदार्थ करनेवालोंसे प्रार्थना है कि वे ध्यान देवें और अपने बिछडे भाइयों व पितरोंसे हमें बुरा न बतावें। क्योंकि वेदका ऐसा मन्तव्य नहीं है। वेदका प्रमाण वेदसे होता है। जो वेदके तत्वको नहीं समझ सकते, आज लोग उनके साथ नहीं होंगे। समय निकट आ पहुंचा है कि वेदके नामपर हमें असभ्य द्वेषी बनानेवाले भाष्यकारोंको सदाके लिये तिलाञ्जलि दे दी जायगी।

वेदोंमें तो देवोंको ' असुर ' और ' असुरों ' को देव लिखा है। तब उन अर्थ करनेवालोंसे हम पूछते हैं कि क्या वह बुरे अर्थ करके अपने पूजनीय उपासक देवों तथा पितर जनोंको बुरा नहीं कहते हैं, तथा क्या यह पाप नहीं है ? हम ऐसे विद्वानोंको वेदका ज्ञाता नहीं मानेंगे। किन्तु साम्प्रदायिक कठंगर मानेंगे।

वेदमें असुरको देव और देवको असुर लिखा है

ऋग्वेद प्रथम अष्टकमें ७ स्थानोंपर वेदके देवोंको 'असुर' लिखा गया है और इसी प्रकार अन्यत्र भी ऐसाही पाया जा रहा है। और असुर वृत्र इन्द्र-शत्रुके लिये 'एकदेव' नाम लिखा है और पूर्व पितर अग्निको भी 'असुर' नाम दिया है। जिसे सम्प्रदायी जन ईश्वर कहते रहते हैं। यह सारे प्रमाण यहां भैंट करते हैं कि पाठक महोदय व्यर्थ अर्थको त्याग न कर देवें—

वरुण असुर ॥असुर—**(१) क्षयन्नस्मभ्यमसुरप्रचेता**

(ऋ. १।२४।१४)

सूर्यरश्मि ॥ ,, —**(२) 'असुरः' सुनीथः**

(ऋ. १।३५।७)

सविता देव ॥असुर—**(३) हिरण्यहस्तो 'असुरः'**

(ऋ. १।३५।१०)

इन्द्र देव ॥असुर—**(४) बृहच्छ्रवा 'असुरः'**

(ऋ. १।५४।३)

मरुत् देव ॥असुर—**(५) रुद्रस्य मर्या 'असुरा' अरेपसः**

(ऋ. १।६४।२)

अग्निश्च ॥असुर—**(६) सोमो 'असुरैर्नो' विहव्यः**

(ऋ. १।१०८।६)

त्वष्टा देव ॥असुर—**(७) त्वं विश्वमसमसुरस्य**

(ऋ. १।११०।३)

वरुणपिता ॥असुर—(८) अधो विचिश्च असुरः पिता (अथ. ४।१५।१२)

विश्वकर्मा ॥असुर-(९) ततो देवानां समवर्ततासुरेकः (ऋ. १०।१२१।७)

सम्राट् ॥असुर—(१०) सम्राडस्यसुराणां (अथ. ६।८६।३)

सवितादेव ॥असुर— (११) देवस्य सवितुर्वार्यं महद्-वृणीमहे 'असुरस्य' प्रचेतसः (ऋ. ४।५३।१)

वृत्रासुर ॥ देव—(१२) 'यद्देवस्य' शवसा प्रारिणा 'असुं रिणन्नपः' (ऋ. २।२२।४)

वृत्रासुर ॥देव—(१३) अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्वा प्रत्यहन् 'देव एकः' ॥
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः
सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥(ऋ. १।३२।१२)

देव-असुर ॥'एकदेव'—(१४) 'पूर्वे अग्ने पितरः' महद्देवानाम् 'असुरत्वमेकम्' (ऋ. ३।५५।१)

(१) वरुण देवता असुर है। (२) सूर्य-रश्मि किरण (अप्सरायें) असुर हैं। (३) सविता सबको प्रसूत करनेवाला असुर है ॥ (४) देवोंका राजा इन्द्र असुर है ॥ (५)मरुत् गण इन्द्रसेना व इन्द्रसखा असुर हैं। (६) ऋत्विज गण असुर हैं ॥ (७) त्वष्टा=देवपिता असुर है ॥ (८) वरुण-पिता असुर है ॥ (९) विश्वकर्मा सारे विश्वका रचयिता 'एक' असुर है ॥ (१०) असुरोंके राजाको 'सम्राट्' कहा जाता है। (११) सविता देव असुर है। (१२) वृत्रासुरको हे इन्द्र, तुमने प्राणरहित कर जलों को बहाया। जो 'वृत्रदेव' बलवान् था ॥ (१३) हे इन्द्र, जब तूने 'वृत्र एक देव' पर आक्रमण किया तो उस 'एकदेव' ने तेरे वज्रपर वार किया था। तब इन्द्रने घोडेकी पूछ समान होकर बचाव किया था, तुमने पणिकी छिपाई गौवें नीति और वहांके सप्तसिन्धुओंको जो रोके हुवे थे, उनका बहाव खोल दिया ॥ (१४) अग्नि हमारे पूर्वपितर (पूर्वदेव-असुर) है। हे महान् देवो, तुम देव असुर 'एकवंश' हो ॥

ऋ. ३।५५।१-२२ तक बाईस ऋचाओंमें ७ देवता विश्वे देव-अग्नि-अहोरात्र (मित्रावरुण)- द्यावापृथिवी -(रात्री-उषा) दिशा-इन्द्र हैं। प्रजापति-ऋषि इन सबको देवासुर 'एक' वंश बताते हैं। 'महद्देवानामसुरत्वमेकम् ' यह टेक २२ बार कही गई है कि तुम सब देव या असुर-एकदेव महान् वंशके भाई हो। बताइये, वेदका कौनसा देव-असुर नहीं और कौन सा असुर देव नहीं माना गया? जब सारे देव या असुर एकरूप हैं। तो क्या अर्थ करना उचित होगा ?

छन्द-जन्द

असुर और देव वेदसे ही एकसमान और एकवंश सिद्ध होता है। अतः इस असुर और देव विवादका पता हमें वेद (छन्द)के मुकाबलेमें पारसी धर्मपुस्तक 'जन्द' से मिलता है, जो छन्दकाही विकृत रूप है और इनके व्यं 'वृत्रघ्न' नामक देवता तो है। परन्तु यह (असुर) 'अहुर' पूजक हैं जो यहांसे लडभिडकर अन्यत्र जा बसे और छन्दके स्थानमें 'जन्द' धर्म-पुस्तक रच ली।

मैं देवकी पूजासे बाज आया। मैं 'जरतस्थर' मजद् परस्तसे सम्बंध रखता हूं। जो देवोंका 'शत्रु' है ॥ (गाथा उष्टीवुयती)

जरतष्ट्र अवश्य ही 'त्वष्ट्' वंशका नाम होना चाहिये। जो पार्शिया देशमें जाकर फला फूला। इनके सभी कार्य वेद-समान होते हैं। अग्निपूजक तो ये जगत् भरमें ही विख्यात हैं। देवशत्रु असुर=प्राणपति पिताको यह मानते हैं। इससे यह सिद्ध है कि वेदमें न तो एक समयकी सारी घटनाओं-काही वर्णन है और न वह किसी एककी रचना है। उसमें देव-असुर वंशोंके झगडोंकी घटनाएं बहुत हैं। जब तक हम इन घटनाओंके ऐतिहासिक स्थानोंको नहीं जान लेंगे, तबतक हम वेदके तत्वको नहीं पा सकेंगे। हमें उन घटना-स्थानोंकी खोज करनी चाहिये। अबतक जो व्याकरणद्वारा शब्दोंकी तोड-फोडसे अर्थ बनाये गये, उससे असली घटनाएं लुप्त हो गईं।

पर्शियन हमारे भाई हैं, जो यहांसे बाहर जा बसे थे। आपत्काल समय पुनः वह अपनी मातृभूमिमें लोट आये और यहां हमारे साथ मिलकर रहते सहते हैं। यह प्राचीन आर्य-वंश है। जो विद्या तथा व्यापारमें उत्तम योग्यता रखता है। और सुन्दर गौर वर्ण और हिन्दुप्रेमी है ॥

पारसी या पर्शियन मित्रावरुण-वंशके है। जो विश्वदेव भी कहाते हैं, यह पितर और देवता दोनोंमें माने गये हैं। यह वंश 'पूर्वदेव' कहानेवाला है। पारसी या पार्शिय नाम मित्रा-वरुणके नामसे बने हैं।

मित्रावरुणी-पारसी

(१) पृषती क्षुद्रपृषती स्थूलपृषती ता मैत्रा-वरुण्यः। (यजु. २४-२)

(२) पृषतः=मृगो बिन्दुश्च रजतम् (उण. ३।१११)

(३) पृषन्तस्त्रैयम्बकाः (यजु. २४।१८)

(४) अकुष्टि 'पृषत'॥ आश्वलायनगृह्य०
(४।८।११)'पर्षद्वर्णो लोहितः शुक्लबिन्दुभिः संयुक्तः'॥

(५) पृषन्ति बिन्दुपृषताः । पुमांसो विप्रुषः स्त्रियाम् (अमर. वारि. ६)

(१) मित्रावरुण ३ प्रकार बिन्दु या छींटोंसे ३ प्रकारकी प्रजाएं उत्पन्न करते हैं। बून्दे, छोटी बूंदे, स्थूल बूंदे अर्थात् ३ प्रकार की वृष्टिसे ३प्रकार साधारण, क्षुद्र और उत्तम प्रजायें। शूद्र-आर्य (वैश्य)ब्राह्मण उत्पन्न किये हैं। (२) पृषत = लालमृग श्वेत चांदी समान बिन्दुओंवाला कहाता है। (यह मृग मित्रावरुण समान माना जाता है) (३) पृषन्त-त्रैयम्बक पितर नाम है। ३ आंखों-वाला मित्रका नाम है। इटलीमें एक प्राचीन द्यौष्पितर (ज्यु-पिटर)की मूर्ति पायी गई है। अतः मित्रको ३ आंखवाला भी कहा गया है जो वायु=मृग है। (४) पर्षद वर्ण=लाल मृग तथा लाल वर्ण और श्वेत बिन्दु जिसके साथ हों, सो पृषद्वर्ण है। बिन्दु या बूंद और छींटोंके नाम—(पृषन्त-बिन्दु-पृषत-विप्रुष) हैं। पृष्टि = वृष्टि है॥ अतः पृषन्त व पृषत नाम प्रजाओंकी 'वृष्टि' करनेवाले मित्रावरुण देव हैं। जिनके नामपर **पर्शियन पारसी-जाति और पर्शिया-पारस देश और परशी या पारसीभाषा और परस्ता = फरिश्ता (देवदूत) परस्तान परि अप्सरा यह शब्द पृषत से बने हैं।**

बिन्दु लिपि व भाषा

और जिस भाषामें 'अन्दा' वस्ता लिखी गई है वह मिडि कहाती है। मेडि वेद वाणीके ५७ नामोंमेंसे है। और यह बिन्दु लिपि मेसोपोटमियाके ईंटोंके लेखोंपर जो मित्ति-मितानी राजाओं के हैं, मिली है। जिन लेखोंके निर्माताओंको योरुपके ऐतिहासिक सर्वप्रथम भारतमें आनेवाले आर्य वंश मान बैठे हैं।

यही बिन्दु लिपि मिडियाके पासके पहाडोंपर जो लाल रंगके (संगखारा) कहाते हैं, दारय्यु-केखसो-इरानी बादशाहोंके लेख लिखे मिले हैं, जो मिडि-पारशी-पहलवी तीनों भाषाओंमें हैं। हमारे प्राचीन सिक्कोंपर यह बिन्दुमालायें बनी हुई हैं। हमारे देशके पुरुष भी बिन्दु-छान्टके वस्त्र पहनते हैं। और मेहन्दी के लाल रंगके बिन्दु बनाकर पूजा करते हैं। अतः यह बिन्दु मैत्रावरुणका चिह्न है।

पारस्करसूत्र और पारीक ब्राह्मण

'पारस्कर' ऋषिका बनाया 'पारस्कर गृह्यसूत्र' आज भारतके वैदिकोंका प्रमाणिक ग्रंथ है। और बीकानेर (बागड) देश में पारीक ब्राह्मणोंसे अन्य ब्राह्मण नित्य झगडा रखते हैं। और कहते हैं कि यह ब्राह्मण–शाखाओंमेंसे नहीं। यह बेचारे अपनेको 'पाराशर' कहते हैं। असली बातका उनको पता नहीं है कि वह वेदके मुख्य देवता मित्रावरुण-वंशके ब्राह्मण हैं। जिन के वंशका पारस्कर गृह्यसूत्र सब ब्राह्मणोंको मान्य है। वह भी 'पृषन्त' वंशके पारस्कर ब्राह्मण हैं। जिन मित्रावरुणसे वसिष्ठ अगस्ति-अत्रि और भृगु-अङ्गिरा वंशी ब्राह्मण जन्मे हैं, उसी वंशसे पारसिक वंशी हैं। यदि अगस्त्य व वसिष्ठादि मित्रावरुणी कहे जा सकते हैं, तो पारीक 'पारस्कर' भी वही हैं। यह वंश अधिक बागड 'वाग् इडा' देवी वाणी सरस्वतीके नामपर बसे देशमें तथा मारवाडमें बसते हैं। वरुणकी यही पश्चिम दिशा थी जहां मित्रावरुण-वंश रहता है। पारस्कर ऋषि भी पश्चिम देश का था। पारस्कर-पारसी-पृषत् मित्रावरुण एकवंशी हैं।

पूर्वदेवोंका अन्य देश चले जाना

वेदमें यह बताया गया है कि सर्व प्रथम१० देव इन्द्र-सोम-अग्नि-त्वष्टा-धाता तथा उनसे उत्पन्न इन्हीं नामोंके देव जो जन्मे थे वह अपने पुत्रोंको यह लोक सौंपकर अन्य लोकमें चले गये थे। वह प्रमाण देखिये।

**ये त आसन् दश जाता देवा देवेभ्यः पुरा॥
पुत्रेभ्यो लोकं दत्त्वा कस्मिंस्ते लोक आसते॥**
(अथ. ११-८-१०)

"जो पूर्वदेवोंसे पहले १० देव उत्पन्न हुए थे, पुत्रोंको यह लोक सौंपकर किस अन्य लोकमें जा बसे हैं?"

**दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा।
यो वै तान्विद्यात्प्रत्यक्षं स वा अद्य महद्वदेत्॥**
(अथ. ११-८-३)

"पूर्व समय प्रथम पूर्वदेवोंसे जो १० देव साथ साथ उत्पन्न हुए थे, जो उनको साक्षात् प्रत्यक्ष जानता है, वह आज ही महान् वाणीसे बोलेगा अथवा उनको प्रत्यक्ष बतायेगा।"

पूर्वदेवों और देवोंके दो दल बन चुके थे। वृत्र इन पूर्वदेवोंमें बहुत बडा धनवान् तथा बडा अमीर हो गया था। इसके बडी सुंदरी अप्सरायें थीं और इसके पास एक योद्धा स्त्रीसिपाही भी।

इसीसे इसके स्थान त्रषाम स्वर्गका नाम 'अधिपत्नी' पड़ा था। देवोंको 'निलम्प' कहा जाता था।

देवोंके राजा इन्द्रसे वृत्रका विवाद सोमपानपर चला। अन्ततः इन्द्रने छलसे वृत्रको, जो त्वष्टापुत्र (असुर) कहा जाता है, मार दिया। तबसे पूर्वदेव पारसी आदि यहांसे बाहर जा बसे।

पूर्वदेवोंकी हार

यस्यां 'पूर्वे पूर्वजना' वि चक्रिरे,
यस्यां 'देवा असुरानभ्यवर्तयन्। (अथ. १२।१।५)

"जिस भूमिपर (हमारे) पूर्व समयके राजा पूर्वदेव जनोंने विविध कार्य किये थे, अर्थात् यह सब कुछ रचना की थी। जिस-पर देवोंने असुरों (पूर्वदेवों) को परास्त किया था।"

वेदका मुख्य भूमिसूक्त स्पष्ट बता रहा है कि देवोंने पूर्वदेवों (असुरों)को जहां हराया था, वह इन सबकी मातृभूमि अदिति-स्थान है। जो द्यौ-अन्तरिक्ष-स्वर्ग-माता-पिता-पांचजन्य तथा जननी-जन्मदाता सब कुछ है। और अदिति देवमाता वही है जहांपर प्रजापति-वंशके दो भाग असुर तथा देव बसते थे। वही दिति और अदिति भी थी। और यही द्यावा-पृथिवी दो भागमें बैठ गई, जिसे लोग आकाश व भूमि समझनेकी भूल करते हैं।

द्यावापृथिवीके दो पार्श्व

१ द्यावपृथिवी दक्षिणपार्श्वे
विश्वेषां देवानां उत्तरम् (यजु. २५।५)
२ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ (यजु. २४।१)
३ द्यावापृथिवी=पार्श्वौ नाम (निरु. दै.)
४ द्यावापृथिवी-अदिति नाम (निरु. दै.)

जहांपर द्यावापृथिवी दक्षिण पसवाड़ा और सारे देव उत्तर पसवाड़ा बन कर रहे, वह स्थान त्वष्टापर्वत है। श्वेत और कृष्ण दो पसवाड़े त्वष्टादेवके अङ्ग कहे हैं। यह स्थान त्रषाम-पर्वत है, जो द्यौ-अन्तरिक्ष-पृथिवी-स्वर्ग है। पार्श्व नामभी इसी-से है।

इसी द्यावापृथिवी स्थानका नाम अदिति भी है। आकाशकी कल्पना भ्रम है। इस द्यावापृथिवीको त्वष्टा देवने बनाया है। जो विश्वकर्मा दुवस्योंका पति है। इसी स्थानपर असुर त्वष्टा सबके पिता राजा थे, जिनकी सन्तानें असुर व देव हैं। यहां अर्धे भागमें असुर पूर्वदेव बसते थे, अर्धमें देव रहते थे। यह यहांके दोनों पसवाड़े विकृत नामसे दादूदडे और वेडी कहाते हैं। यही अर्ध भी मानी गई है।

अर्ध और अर्ध-देव

१ अर्द्धे देवा अर्द्धे असुरा। (निरु. ३।२१)
२ नेमे देवा नेमे असुरा॥ (निरु. नैघण्टु. ३।४।४; ऋ. २।२।१६।१२)
३ देवानामर्धभागसि (अथ. ६।८६।३)
४ प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे॥ (ऋ. ६।३०।१)
५ इन्द्रं न वृत्रतुरमर्धदेवम्॥ (ऋ. ४।४२।८)
६ अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धं कतमः स केतुः। (अथ. ११।४।२२)
७ दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् (अथ. ९।९।१२)
८ आर्तभाग = अर्धभाग पारसी जाति व भृगु गोत्र॥ (आश्वलायन, गोत्रप्रवर)
९ अर्द्धवलि=अर्वलीपर्वत (आडीवली) (त्रषाम पर्वतसे आरम्भ) (भारतभूगोल)
१० नीम्वड=जाटगोत्र-निमाडदेश-नेमं-अर्द्ध (मध्य)
यम-यमी (ऋ. १।१६८-५)

(१) आधे देव और आधे असुर बसनेवाले थे। जहां त्वष्टाके दक्षिण उत्तर दो भाग थे।

(२) त्वः और नेमे यह दो नाम अर्धके हैं। त्वः= हटकर, विस्तृत। नेमे=काटकर अलग किया गया इत्यादि। हे अग्नि, दो भागोंमें बँटे हुए, प्रजापतिसे उत्पन्न हुवे। देव असुरों मेंसे त्वः= आधा-असुर भाग तेरे-तनकी हिंसा करता है और आधा भाग स्तुति करता है। नेमे देवा नेमे असुरा ... दो भाग एकदेव त्वष्टा वंशके त्रषाममें हो गये। यह निरुक्तमें इतिहास है।

(३) देवोंका राजा अर्धभाग (इन्द्र) है।

(४) इन्द्र द्यावापृथिवीके अर्धभाग समान है।

(५) इन्द्रने जहां अर्धदेव वृत्रको जीता था, वह स्थान वृत्रतुर्य अब त्रषामके पास "बड़थल" है।

(६) इस आधेसे यह विश्वभुवन रचा गया है और, यह आधा इसका किस प्रकार केतु 'झन्डा' है?

(७) अष्टचक्रा नौ द्वारवाली जो देवपुरी है, उसेही सु

कहते हैं। उसका अर्थ परे पुरका ईश है।

(८) अर्धभाग= आर्तभाग नाम पारसी जातिका विख्यात है और भृगु गोत्रभी आर्तभागी है। इस प्रमाणसे पारसी व भृगु पूर्वदेव और अर्धभाग स्थान ' त्वषाम ' के निवासी सिद्ध हैं।

(९) त्वषाम पर्वतसे अरवलीपर्वत प्रारम्भ हुआ है, जिससे वह अर्धवलि= अर्वली= आडीवलि कहाता है, जो भारतके मध्यमें है। जिसने भारतको दो भागोंमें बांट दिया है। इसी पर्वतके दो भाग असुर व देव आधे आधे बंटे थे। दक्षिणमें पितर, उत्तरमें देव बसे।

(१०) नेम ऋषि थे, जिनके सम्मुख इन्द्र खडा हो गया था। नेम आधेका नाम भी है। नेम यम-यमीका नाम है। नेम हम नित्य ही कहते हैं। निमाड देश है। त्वषामके निकट नीम्बड जाट गोत्र है।

अर्थात् जहां पूर्वदेव परास्त हुए, वह द्यावापृथिवी-अदिति-अर्ध नामक प्रजापति स्थान त्वष्टाके परमे व्योमन् स्वर्गका नाम आज त्वषाम है।

त्वष्टाका त्वषाम जगत्-बीज है

त्वष्टादेव देवपिता एक देव सारे जगत्का बीज-पुरुष कहा गया है। वह पुरुष साकार अङ्गोंसे युक्त त्वषाम पर्वत पुरुषाकार है, जिसे वेद तथा निरुक्त असुर पूर्वदेव नाम देते हैं। आदिति-को 'पूर्वचित्ति' भी इसी कारण नाम दिया गया है। अतः यह सब नाम पूर्वदेवोंके है। यही स्थान द्यावापृथिवी है। आकाश-स्वर्ग परमे व्योमन् यहांके पर्वतपर अष्टचक्र है। इस द्यावा-पृथिवीकी सीमा वेद बता रहा है। सप्तसिन्धु-पर्वतस्थ चक्रदार सात घेरदार जलकी भरी नदियां भरी रहती थीं। आवश्यकता-नुसार नीचे भूमिवालोंको इनमेंसे पानी छोड दिया जाता था। जैसा कि इन्द्रने इस स्वर्गको जीतकर नदियोंका बंद खोला था इन्हीं चक्रोंके चिह्न आजभी वर्तमान हैं। यही द्यावापृथिवी और सप्तसिन्धु एकस्थानीय हैं। इन्हें अन्यत्र खोजनेके लिये ईरान व काबुलकी तथा पंजाब व गङ्गा-जमनाको मिलाना व्यर्थ है। यह सब त्वषाम पर्वतपर देखें। जो द्यावापृथिवी सप्तसिन्धु व ' जगत्-बीज ' हैं।

जहांसे पारसी पर्शियाको गये, वह इसी स्थानको ' आर्यन बेइजो' (आर्योंका बीज) नामक देश मानते थे। जिन १६ देशोंके नाम जन्दकी प्रथम पुस्तकमें दिये हैं, वह यही 'जगत्-बीज' है, जिसे जेन्दावस्ताने आर्यन् बेइजो (आर्योंका बीज) लिखा है। वेन्दिदादके प्रथम फर्गर्द-

द्यावापृथिवी और उसकी सीमा

१ यावच्च द्यावापृथिवी यावच्च सप्तसिन्धवो वितस्थिरे। (यजु. ३८-२६)

२ ये इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भु-वनानि विश्वा। (ऋ.१०।११०।९)

३ त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्। (यजु. १३।५०)

४ ते हि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः। (ऋ.१०।६४।१४)

(१) जहांतक द्यावापृथिवीकी सीमा है। जहांतकही सप्त-सिन्धु भरकर फैले हुए हैं।

(२) जिसने इस द्यावापृथिवीको रूप और नाना प्रकार शृङ्गारसे सजाया तथा विश्वभुवनको रचा है। वह त्वष्टादेव विद्वान् है। उसकी हे होता! यज्ञद्वारा पूजा करो।

(३) त्वष्टा देवने प्रजाओंको प्रथम जन्म दिया है। हे अग्ने त्वष्टा! मेरी हिंसा न हो। यह तेरा आकाश स्वर्ग है।

(४) हे द्यावापृथिवी मातामही! तेरेसेही सारे देवता-यज्ञोंका जन्म हुआ है।

जगत्-बीज पुरुष

१ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्। (ऋ. १०।९०।१, अथ. १९।६।१)

२ पुरुष = पुरीष (पुरका राजा) पुरिका राजा = त्वष्टा मध्यमेन्द्र।

जिस पुरुषके हजार शिर हैं। (तो फिर हजार शिरोंमें दो हजार आंखें व पांव होने चाहिये) परन्तु यहां पांच सौ एक पक्षवाले रहते थे। पांच सौ दूसरे पक्षवाले थे। तब सहस्रशिरका कथन ठीक रहता है। क्योंकि आधे यहां असुर और आधे देव थे। सब सहस्र थे। इस ' पुरुष'के जो त्वष्टा पर्वत है, सभी अङ्ग पुरुषाकार बने थे। पुरुषचिह्न यहां देखने योग्य है। अन्यथा इसी स्थानको जगत्बीज पुरुष वेदमें नहीं कहा जाता। इसके अङ्गोंका वर्णन वेदमें अनेक स्थलोंपर लिखा है।

विशेष बात यह है कि यह स्थान ' पुरुष त्वष्टा ' पुरुषा-कार अङ्गोंसे युक्त है। जहांपर सारे जगत्के पूर्वपुरुषोंकी उत्पत्ति

हुई और पश्चात् वृद्धि पाकर देशान्तरमें फैले। इसी स्थानसे चारों दिशाएं और उनके 'छन्द' निश्चित किये गये थे, जिनके प्रमाण वर्तमान हैं। इसी स्थानपर अपसृपी 'नक्षत्र' योनि आकार त्रिकोण सारी रात रहता है, जिसका विशेष गुण भरण पोषण है। इस विज्ञानका बहुत समयतक अनुसन्धान यहां पुरुष त्वष्टा देवने जगत्बीजरूप ..र जगत्बीज बोया। क्योंकि सब.. प्राणी योनिसे उत्पन्न होते हैं। और प्रत्येक प्राणीके उत्पत्तिके अङ्ग शरीरके मध्यमें होते हैं कि सुरक्षा हो सके। इसी विज्ञानानुसार 'योनि' स्थानमें जगत्बीज भारतके मध्यमें स्थिर किया गया था।

यदि उत्पत्तिके अङ्ग या कार्य शिर तथा पावों कर सकें तो तिब्बत या मध्य एशियाका नाम उचित हो सकता है। अन्यथा सृष्टि-विज्ञानसे त्वष्टाका जगत्-बीज सारे जगत्का बीज सिद्ध हो चुका है और जो ज्येष्ठराट् (सबसे बडा राजा) भी वेदमें कहा है। अतः आ.. दूसरा विस्तृत लेख 'जगत्-बीज त्वष्टा' पर लिखा जायगा। जो वेदानुसार और प्रत्यक्ष खोज है, जो बहुत समय और महान् परिश्रमसे प्राप्त हुई है। जहां से पूर्वदेव कभी असीरिया-पर्शिया-बिबलोनिया-तथा मेसोपोटा-मिया व मिस्रादि देशोंको जाकर बसानेवाले बने हैं। वह स्थान 'तुग्र' तीर्थ 'तुग्रा..' भी कहाता है।

देव सविता-त्वष्टा-सूर्य

(१) विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव॥ (ऋ.५।८२।५)

(२) सविता त्वा सवानां सुवताम् (यजु. ९।३९।१)

(३) देवस्याहं सवितुः सवे सत्यसवसो (यजु. ९।१३)

(४) सविता प्रसविता (यजु. १०।३०)

(५) सविता प्रथमे अहन्नग्निर्द्वितीये (यजु. ३९।६)

(६) सविता प्रसविता सविता वै देवानां प्रसविता (शत. ५।४।५)

(१) सारे जगत्के उत्पन्न करनेवाले सविता देव! सारे पाप, बुराइयां हमसे दूर करो और जो भलाई हैं, उन सबको हमारे समाप करो। (२) हे सविता देवा तू सबोंको उत्पन्न करनेवाला है। (३) मैं सविता नामका देव सारे जगत्के सत्य रूपको उत्पन्न करनेवाला हूं। (४) सविता सबको प्रसूत (उत्पन्न) करनेवाला है। (५) सविता प्रथम देव है। अग्नि द्वितीय देव है। अर्थात् पहिले सविता देव हुआ है। (६) सविता सबको उत्पन्न करनेसे है। सविता निश्चयही सारे देवोंका जन्म देनेवाला, प्रसव करनेवाला है। जो साकार देहयुक्त है।

शरीरधारी सवितादेव

(७) देवस्त्वा सवितोद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या॥ अव्यथमाना पृथिव्या माशा दिश आपृण॥ (यजु. ११।६३)

हे सवितादेव! तेरे दो पावों, सुंदर हाथ, सुंदर अंगुली, सुंदर भुजा (बाहू) हैं। और शक्ति (पत्नी) होनेसे तू शक्तिवान् है। तुझे यह शक्ति (उद्वपतु) बीज बोनेके लिये स्वीकार करे। हे स्त्री! तेरेमें उत्पन्न सन्तानार्थ बीज अर्पण करे। जिससे तुझे पीडा न होवे और उन सन्तानोंसे इस पृथिवीकी दिशा और प्रदिशाएं (सारी दिशाएं) भरपूर हो जावें। सर्वत्र तेरी सन्तान फैल जावें।

सविता त्वष्टा सुने

(८) उत 'माता बृहद्दिवा' शृणोतु 'नस्त्वष्टा' देवेभिर्जनिभिः 'पिता' वचः॥ (ऋ. १०।६४।१०)

देवमाता बृहत् द्युमें रहनेवाली हमारी प्रार्थना सुने। और त्वष्टादेव (सविता) अपने देवपुत्रों व देवपत्नियोंसहित हमारा वचन श्रवण करें।

सविता इस ग्रामको अभय करे

(९) अभयं द्यावापृथिवी इहास्तु नोऽभयं सोमः सविता नः कृणोतु॥१॥ अस्मै 'ग्रामाय' प्रदिशश्चतस्र ऊर्जं सुभूतं स्वस्ति सविता नः कृणोतु॥ २॥ (अथ. ६।४०।१-२)

[यहांपर सब एकस्थानीय देवोंसे अभयकी प्रार्थना है](इह) यह द्यावापृथिवी (द्यु व पृथिवी स्वर्ग) हमें अभय करें। राजा सोम सविता अभय करें। (अस्मै ग्रामाय) इस त्वष्टा नामके ग्राम में जो ४ प्रदिशाओंसे युक्त है, बल-सुख-कल्याण सविता-मन्युराजा प्रदान करें॥ दिशायें यहांसे स्थिर हुई हैं। यहांतक वेदसे ज्ञात हुआ है कि सविता = सबका उत्पादक पिता-त्वष्टा-सब देवोंका जन्मदाता है। जो सबसे प्रथम हुआ था। और देह-धारी मनुष्यके समान हाथ-बाहू-अंगुलीसहित तथा शक्ति (पत्नी) युक्त सन्तानोंके उपजानेवाला, बडे स्वर्गलोकमें देवमाताओं व

देवपुत्रोंसहित सबकी सुननेवाला रक्षक पिता व राजा था। जहां पर द्यावापृथिवी स्वर्गलोक-भयरहित स्थान था। सोमराजा व सविता अभय-दाता थे (जिस ग्रामका यह वर्णन है) वह ४ दिशाओंकी स्थापना करनेकी स्वर्गभूमि स्थान (त्वष्टा-निवास) था। जहां सविता बल-सुख-कल्याण-दाता था, वही स्थान अब त्वषाम नामसे हरयाणा (हिरण्यमयाना) देशमें विख्यात है। जो वेदकालमें द्यावापृथिवी-नामसे प्रसिद्ध था। जिस वेदोंमें बहुतसे नाम हैं। जैसेही त्वष्टा एकदेवके सविता-सोम-इन्द्र-मित्र-वरुणादि बहुत नाम हैं। जो पुरुष-विराट् विश्वकर्मा-बहुत नामोंसे वेद में कहा है। जिसके सहस्र नाम हैं। सहस्र-शिर (परिवार) थे। उसकी मध्यकालीन प्रतिमा प्राप्त है। जो प्रत्यक्ष देखने योग्य है।

शंका-समाधान

(शंका) कहते हैं कि वेदमें निराकारकाही वर्णन है। साकारका निषेध बताया जाता है। परन्तु वेद सविताको साकार लिख रहा है, यह आश्चर्य है। क्या अन्य देवता भी देहधारी हैं? तो फिर प्रतिमा-पूजाका निषेध क्यों? देवोंका जन्मदाता सविताही प्रथमदेव देहधारी है।

(समाधान) यह विषय बडा आवश्यक है। किन्तु इसपर साम्प्रदायिक पक्ष बना हुवा है, जो वेदसे भिन्न भाव खेंचा तान करके प्रकट करता है। चारों वेदोंमें तो 'निराकार' शब्दही नहीं है। न वेदोंमें किसी सूक्त व मन्त्रका देवता 'निराकार' नामका लिखा मिलता है और नाही वेदोंमें कोई प्रार्थनाही निराकार नामके देवतासे की गई है। जब वेदमें निराकार पदही नहीं, फिर निराकार कहांसे आया?

वेदके देवता

(१) अग्निर्देवता-वातो देवता-सूर्यो देवता-चन्द्रमा देवता-वसवो देवता-रुद्रो देवता-आदित्या देवता-मरुतो देवता-विश्वे देवा देवता-बृहस्पति र्देवता-इन्द्रो देवता-वरुणो देवता ॥

(यजु. १४।२०)

क्या ये सारे देव साकार हैं! फिर इनकी पूजा-प्रार्थना-उपासना सर्वत्रही वेदोंमें है। इनको निराकारकी ज्योति कहना भ्रमजाल है। वेद स्वतःप्रमाण इसीसे कहे जाते हैं कि वेदका प्रमाण वेदसे किया जावे। वेदमें इनको निराकार या उसकी विभूति लिखी हो, तो दिखावो।

प्रत्यक्ष देवता

**(२) अग्निर्वायुश्च सूर्यश्च मरुतः पृथिवी तथा।
आपो रात्रिरुषा गावः प्रत्यक्षैः कर्मभिस्तुता ॥१॥**

(ऋ. अनुक्रमणी, अ. १)

अग्नि-वायु-सूर्य-मरुत्-पृथिवी-आपो-(वरुण)रात्री-उषा-गौ ये प्रत्यक्ष समान स्तुति किये जानेवाले हैं।

(३) नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि (ऋ.)

हे वायु = इन्द्र! तू प्रत्यक्ष ब्रह्म है।

(४) इन्द्र त्वा वेद प्रत्यक्षं स्कम्भे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥

(अथ. १०।७।३०)

हे इन्द्र! तू प्रत्यक्ष 'स्कम्भ' सारे सुखोंवाले स्वर्गको प्रतिष्ठित करनेवाला है, यह मैं जानता हूं। (स्कम्भ इन्द्रपर्वत त्वषाम है।)

साक्षात् इन्द्र

(५) अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना ॥ (ऋ. ८।१००।४)

नेम ऋषिने कहा, 'इन्द्र नहीं है।' इसपर इन्द्रने प्रकट हो कहा- 'हे नेम! मैं यह इन्द्र हूं, मुझे देख, मैं सारे विश्व भुवन को अपनी महिमा द्वारा दबाता हूं। यज्ञ-कर्ता मुझे बढाते हैं।'

(६) यस्मै हस्ताभ्यां पादाभ्यां वाचा श्रोत्रेण चक्षुषा। यस्मै देवाः सदा बलिं प्रयच्छन्ति विमितेऽमितं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥

(अथ. १०।७।३९)

जिसके दो हाथ हैं, पांव हैं, मुख, कान और आंख हैं। जिसको सारे देवता (बलि) भेंट देते हैं, वह परिमित तथा अपरिमित रूपमें सर्व सुखोंका स्वर्गपति है, यह कह।

(७) मरुतः सप्ताक्षरेण सप्त ग्राम्यान्॥ (यजु. ९।३२)

मरुत् देव ७ अक्षर और ७ ग्रामवाले हैं। जिनके ७ ग्राम यहांपर (जोड्ये)=युज्यः नामके हरयाणभरमें प्रसिद्ध हैं। जिन का गोत्र (ओड्ये) विख्यात है। वेदकालमें जिनके ७ ग्राम थे, वह प्रत्यक्ष आज अपने गावोंमें बसे हुए हैं। वेदमें तो सब कुछ देवता है। यास्क कहता है कि देव और उसके संगी पदार्थ सर्व देवता और पूजनीय हैं। चाहे वह जड हो वा अन्य! देवता वह है जो देवे या दीप्त हो या द्युलोक-निवासी हो। वेदमें रथ-घोडा-पर्वत-वनस्पति-सरस्वति आदि नदियां ग्राम पांसने के पत्थर, जल सब देवता हैं।

(८) और वेदोंमें इन सबकी स्तुति व प्रार्थना है।

नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ (यजु. ५।७)

द्यु व पृथिवी स्वर्गलोकोंका नमस्कार है।

(९) शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु।

शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः॥ (ऋ. ७।३५।८)

ध्रुवपर्वत, सप्तसिन्धु, आपः (जल), वरुण ये हमें शान्ति देवें।

(१०) शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ॥

(ऋ. ७।३५।८)

चारों प्रदिशाओं युक्त प्रदेश हमें शान्ति देवे।

(शंका) वेदमें तो-स्वदेश-स्ववंश-प्रकृति-का सत्कार करने-अपनानेका स्पष्टही उत्तम पूजनीय वर्णन है। इसे जड-पूजा क्यों कहा जाता है?

(समा०) यह उन कहनेवालोंसे पूछना चाहिये। मैं तो वेद-पूजाको सत्कार करनेवाला हूं। मातृभाषा-मातृभूमि-मातृसभ्यता यह सर्व पूजनीय ही है।

द्यौ--अन्तरिक्ष-पृथिवी--वनस्पति-ओषधी-आपः--विश्वे देवों आदिसे शान्तिकी प्रार्थना जडपूजा क्यों नहीं है! वेदकालके हमारे पूर्वज अपने देशकी प्रत्येक वस्तुका सत्कार करते थे। तभी उनका देश-प्रेम आज नामसेही विख्यात है। इस पूजाका महान् महत्व है। राजनैतिक-सामाजिक-धार्मिक तत्व और अधिकार इसीमें बसे हैं। गङ्गा हिमालयसे निकलकर वंगसागरमें गिरती है। सारा गङ्गाका विस्तार हिन्दु जातिके ऐतिहासिक अधिकारमें है। इसीसे कि हिन्दुका देव है। एक मूर्ति या मन्दिर हमारा महान् अधिकार स्थापित करता है। संसारमें बडा वही है जिसके अधिकारमें अधिक भूमि हो। वही राजा है, सरकार है। मन्दिर शिवालयों आदिसे कितनीही विस्तृत भूमिके हम मालिक बनते हैं। हमारा मकेमें कुछ अधिकार नहीं। हमारा मसजिदमें क्या हक्क है? इसी प्रकार दूसरे लोग कबरों द्वारा अपना अधिकार जमा लेते हैं। परन्तु हम अपना आधिकार नष्ट करते जा रहे हैं। यह विषय अर्थशास्त्र, विज्ञान तथा राजनैतिक व इतिहासका मूल है। यदि जडपूजा वेदविरुद्धही होती, तो पंजाबके मूर्तिपूजाका नित्य खण्डन करनेवाले दल नैजाम हैदराबादके देशके हिन्दु मन्दिरोंकी मूर्तियोंके रक्षक बनकर न जाते। वह किस सिद्धान्तके आधारपर पाखंड-पूजाके रक्षक बने थे? यह महान् रहस्य व महत्वयुक्त विज्ञान है। हमें तो वैदिक सभ्यता स्वीकार है। जो स्वतः-प्रमाण है, उसीके अनुसार हमें सविता देव पिताकी प्रतिमा मिली है, जिसका परिचय विज्ञ पाठकोंसे करना है। हिन्दुस्थानमें पाकिस्थानका नाम क्यों चला?

सविता (त्वष्टा-सूर्य) की प्रतिमा

यह मूर्ति संवत् १९८० विक्रममें हांसी (अंशी) के प्राचीन दुर्गकी पूर्वी दीवारके पास लम्बी पडी मिट्टीमें दबी मिली थी। ११ वर्ष-हुए जब इस प्रतिमापर एक लेख मेरे नामसे गंगापत्रिकाके पुरातत्वांक (पृष्ठ ३१०-३१२ तक) जनवरी १९३३में छपा हुआ है। यह पत्रिका कृष्णगंज- सुलतानगंज- (भागलपूर) से निकलती थी। उस समयका शीर्षक 'हांसीके किलेकी सूर्य-प्रतिमा' था। जबकि मैंने पुरातत्वकी खोज कुछ वर्षोंसे आरंभही की थी। विशेष पूर्ण ज्ञान मेरेको नहीं हुआ था। अब बहुत कुछ जानकारी बढ जानेपर इसे अधिक परिवर्तनके साथ विशेष खोज रूप सामग्रीसहित अन्य 'शीर्षक' द्वारा लिखा जाता है, जिससे प्राचीन ऐतिहासिक ज्ञान बढेगा।

क्योंकि इस समय मैंने ६४ वर्षकी आयुमें २० वर्षोंके सतत स्वाध्याय व खोजद्वारा वेदोंको समझकर पढनेके पश्चात् इस हरयाणा (हिरण्यमयाना) हिरण्यगर्भ एक देवके बसाये प्रदेशका वेदकालका संपूर्ण इतिहास खोजकर यह साक्षात् कर लिया है कि वेदकालीन द्यावापृथिवी- (द्यौलोक व पृथिवीलोक) जहां सारे देवी देवताओं तथा उनके परिवारोंका जन्म हुआ था, जहां मनुष्य, पितर, देव तथा गन्धर्व-अप्सरा-मरुत्-सप्तऋषि-आदि जन्मे थे और जहांपर 'अर्धे देवाः-अर्धे असुराः' (आधे असुर और आधे देवता) एकवंशके भाई दो भागोंमें बैठकर युद्धार्थ राज्यप्राप्तिके लिये खडे हुए थे। वह प्रदेश जिसे ऐतिहासिक विद्वान् 'आर्योंकी मातृभूमि' के नामसे मध्य एशिया तथा भारतसे बाहर कल्पना करते हैं और नहीं अभीतक उसे पा सके हैं। वह पुण्य स्वर्ग प्रदेश सप्तसिन्धुका उद्गम- स्थान, भुवनोंकी नाभी, वरुणकी राजधानी, ध्रुवपर्वत, त्वष्टाका परमे व्योमन्, विष्णुकी ध्रुवादिशा, इन्द्र वायुका अन्तरिक्ष स्वर्ग (त्वधाम पर्वत) जो भारतका मध्य (अर्धवली) आडीवली (अरवली) पर्वत भाग है, जिसने भारतको दो भागोंमें बांट दिया है। अदिति देवमाताका जन्मस्थान है, जहांपर वेद रचे गये और यज्ञोंमें गाये गये थे। यह अग्नि-वायु-सूर्य (सविता) का त्रिवृत्त (भूमि-मध्य-उपर द्यौ शिखर) त्रिविष्टप ३ स्वर्गरूप तीन भागमें था।

पश्चात् इन तीनों देवोंको ३ स्वर्ग लोक ' उदन्वति = ' पानीवाली, 'पीलुमति'= ग्रहनक्षत्रोंयुक्त मध्यवाली त्वषाम-पर्वत, तीसरी ' प्रद्यु '= परेकी स्वर्ग जहां पितर रहते थे, अब ' वडघु ' (लुहारु स्टेटमें) है।[1] यही प्रदेश ३ स्वर्गोंवाला था। तिब्बत त्रिविष्टप् नहीं। यह त्वष्टा सब देवोंका पिता (सविता) सबको सृष्ट करनेवाला (सविता देवानां प्रसविता। शत० ५।४।५) पुरुष-विराट् विश्वकर्मा-इन्द्र-ज्येष्ठ ब्रह्म॰ प्रत्यक्ष ब्रह्म-साकार शिर- आंख बाहू- मुख- श्रोत्र- पेट- पाद- सब अङ्गोंयुक्त पुरुष इन्द्र है। जहां पुरुष यज्ञ हुआ था। यही त्वष्टा सविता स्वर्गका पिता द्यौष्पिता है। इसीसे ' त्वषाम ' इसका स्थान कहाता था। यहांपर अनेक देवोंके मन्दिर व भुवन थे, अब भी बहुतसी मूर्तियां यहां पर पर्वतपर दबी पडी हैं। त्वष्टा विष्णुके यहां विशाल भुवनके खंडहर हैं। जहाँ प्राचीन भाषामें शिला-लेख खुदा है जिसको लेकर श्री कनिंगहाम महोदयने सन १८७५ में अनुवाद किया था। उस लेखके नीचे कमल का चित्र खुदा है। '. पुष्करसादस्त्वाष्ट्रा-' पुष्कर = कमल अर्थात् अन्तरिक्षमें विराजनेवाला त्वष्टादेव वेदमें कहा है। यह मूर्ति यहांपर थी। यहां ही इसका भुवन था। किसी समय जब कि यहांका राज्य भ्रष्ट हो चुका था, रक्षार्थ हांसीके किलेकी भींतके पास मिट्टीमें दबा दी गई थी, जो लम्बी पडी हुई थी। एक शोराके लिये मिट्टी खोदनेवालोंको उसके कुदालसे भिडनेपर निकाली गई। जिसका एक हाथ कुदाल लगनेसे टूट गया था। यह शोरगर उसे अपने घरपर उठा लाया था। नगरमें पता लगनेपर यह उससे लेकर एक देवीके मन्दिरमें रख दी गई। पश्चात् इसका हाथ जैपुरसे कारीगर बुलाकर ठीक करवाया गया था। इसका काला पत्थर है। इसी पत्थरका एक 'शिलालेख' त्वषाम पर्वतसे मिला है।

यह पत्थर शाहरके उत्तरके पहाडोंसे मिलता है। कसोटी समान काला और कुछ चिकना है। त्वष्टा (सविता= सूर्य) देवोंका उत्पादक माना जाता है। प्रतिमामें ' व्योम ' रूपमें इसी सूर्यका देव परिवार है, जिनकी संख्या २३ प्रतिमाओंसे युक्त है। वेदकालसेही यह त्वष्टापर्वत संसारका पूज्य महान् स्थान रहा है। अतः यह प्रतिमा यहांपरही विराजमान थी, जो किसी समय रक्षार्थ हांसी लेजाकर सुरक्षार्थ दबाई गई। इसके साथकी कुछ और भी प्रतिमाएं वहां हांसीमें हैं, जो सादे पत्थरकी हैं। यहांके शिलालेखका पत्थर इस मूर्तिके समान है। सूर्य त्वष्टा है। जिसका स्थान ' त्वषाम ' होनेसे तथा ' तुग्र ' वैदिक तीर्थ अब भी तीर्थ माना जानेसे हमने इस प्रतिमाको यहांका माना है।

हांसी (अंशी)

इस समय यह प्रतिमा हांसी (अंशी)में इसी मूर्तिके मन्दिरमें चौपटे बाजारमें स्थापित है। यह भारतकी अद्वितीय वस्तु है, यह शिल्पका महान् नमूना है। देखकर मनुष्य चकित हो जाते हैं। इसे देखने दूर दूर के लोग आने लगे थे। पुजारीकी चांदी हो गई। कई हजार रुपया चढावा आया। नित्य देखनेवालोंका मेल रहता था, सरकारी कर्मचारी इसे योरुप भेजना चाहते थे। परन्तु नगरनिवासी सब जनता इसके विरुद्ध थी। यहांके रईस चौ॰ शेरसिंहजीने सरकारसे किसी प्रकार कुछ शर्तोंके आधारपर यह मंजूर कराया कि इसके कुछ ट्रस्टी बनाये जायँ। इसका एक विशेष नमूनेपर भुवन बने। इसे प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्रतासे देख सके। इत्यादि बातोंकी लिखापढी होकर नगरनिवासियोंको मिल गई।

कुछ पंचायती रुपया जमा था। एक पंचायती स्थान भी मिल गया। इसका मन्दिर चौराहेपर बन गया। जिसमें यह अब स्थापित है। परन्तु पुजारी इसे जानबूझकर ' विष्णु 'की प्रतिमा बताते थे। इसमें एक भेद है। यह बात मैंने ठीक नहीं जानी।

---

[1] " आसी आसा आटकी गढ राय पिथौरा " यह कहावत यहां प्रसिद्ध है। जिसका प्रमाण हिसार जिलाके इतिहासमें मुन्शी अमीचन्द साहबने भी दिया है। परन्तु यह नाम आदित्य सूर्य गणसे संबंधित है। यहांपर ध्रुवपर्वतसे उत्तर दिशामें विश्वे देवोंके नामके नगर हैं- **अंश** (आंशी- हांसी), **मित्र** (मैयड), **अर्यमन्** (रमायण), **भग** (भगाना), **पूषा** (पुठी), **वरुण** (बुरे), **सवितुर** (सय्यड = उज्जड), **विवस्वान्** (वैवस्वती = बडसी), **त्वष्टा** (त्वषाम-विष्णु-इन्द्र-मन्यु-अग्नि-यम), **मरुत्** (उमरा), **सप्ताक्षर** (सुलतानपुर), **सप्तरुद्र** (सातरुड), यह सब परस्पर २-४ कोसके अन्तरपर हैं। हांसीका उत्तरी भाग **डाडल** द्वादश विश्वे देवोंके विकृत नामपर है। अंश = सन्तान = सोम = विश्व-देव-वाची है। यहांका दुर्ग बडा महान् था। अब खंडहर हैं। यह राजा मानकरायने बनाया था। जो कोटा बंदीके राजवंशकी कीर्तिका स्तम्भ है। आसाका नाम व्यर्थ है।

मैंने २ फरवरी सन १९३२ को रायबहादुर श्री ला० अर्जुनदास, एम्. ए., डिप्टी कमिश्नर हिसार-की सेवामें पत्र लिखकर प्रार्थना की थी कि इस प्रतिमाके मुखपर साईनबोर्ड समान लिखाया जावे कि यह प्रतिमा सविता (सूर्य) की है, जिससे सर्वको ज्ञान हो सके। क्योंकि यह विष्णुकी नहीं है। इससे बडा दोष आवेगा और भ्रम फैलता है।

परन्तु उन्होंने ५ एप्रिल १९३२ की चिट्ठी नं. ४९६ द्वारा सूचना दी कि हम सरकारी नियमसे आपकी रीसर्चके अनुकूल परिवर्तन नहीं कर सकते। तुम स्वयं अपने आप या प्रचारसे कोई परिवर्तन करा सकते हो।

मैंने इस प्रतिमाकी जानकारीके लिये प्रतिमा निर्माणके कई ग्रन्थ मंगाकर देखें। और कई पुराणोंको भी पढा। तब मैंने समझा कि यह प्रतिमा सविता (सूर्य) त्वष्टाकी है। तब इसपर लेख लिखे। पुरातत्वमें यहांसे मेरा प्रवेश हुआ था।

सांख्य और योग

(लेखक- श्री स्वामी ओरेमानन्दजी तीर्थ, मोहन आश्रम, हरिद्वार, जि० सहारनपुर)

गीतामें सांख्यको ज्ञानयोग तथा संन्यासयोगके नामसे भी वर्णन किया गया है। सांख्य नाम रखनेका यह भी कारण हो सकता है कि इसमें गिने हुवे पच्चीस तत्त्व माने गये हैं।

सांख्य प्रवर्तक- कपिल मुनि

सांख्यके प्रवर्तक श्री कपिल मुनि हुए हैं, और योग-दर्शन के निर्माता श्री पतञ्जलि मुनि। कपिल मुनि आदि-विद्वान् और प्रथम दर्शनकार हैं। यथा-

सिद्धानां कपिलो मुनिः। (गी.१०।२६)

अर्थ- सिद्धोंमें कपिल मुनि मैं हूँ।

ऋषिप्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति।

(श्वेता० उप०)

अर्थ- जो पहिले उत्पन्न हुए कपिल मुनिको ज्ञानसे भर देता है।

आदि-विद्वान् निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद् भगवान् परमर्षिरासुरये जिज्ञासमानाय तन्त्रं प्रोवाच। (पंचशिखाचार्य)

अर्थ- आदि-विद्वान् (पहिले दर्शनकार) भगवान् परम ऋषि (कपिल) ने निर्माण वासनाओंसे रहित चित्तके अधिष्ठाता होकर जिज्ञासा करते हुए आसुरिको दयाभावसे (सांख्य) शास्त्रका उपदेश दिया।

सर्गादावादिविद्वान् अत्र भगवान् कपिलो महामुनिर्धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्यसम्पन्नः प्रादुर्बभूव। (वाचस्पति मिश्र)

अर्थ- सृष्टिके आदिमें आदि-विद्वान् पूजनीय महामुनि कपिल धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यसे सम्पन्न प्रकट हुए।

सांख्यके प्रसिद्ध प्राचीन आचार्य

आदि- विद्वान् कपिलमुनिके पश्चात् ब्रह्मसूत्रकार वेद व्यास कृष्ण द्वैपायनके समयतक सांख्यके निम्न लिखित प्रसिद्ध आचार्य हुए हैं- आसुरि मुनि, पंचशिखाचार्य, जैगीषव्याचार्य, वार्षगण्याचार्य, जनक, पराशर, जिनका दूसरा नाम बादरी है, जो कृष्ण द्वैपायन वेदव्यासके पिता थे।

सांख्यके मुख्य ग्रन्थ

सांख्यके बहुतसे प्राचीन ग्रन्थ इस समय लुप्त हैं। कई एकके केवल नाम ही मिलते हैं।

(१) परम ऋषि कपिलप्रणीत **तत्त्व-समास-** इसके वर्तमान समयमें केवल २२ सूत्र मिलते हैं। वास्तवमें इसीको सांख्यदर्शन कहना चाहिये। इसका उपदेश भगवान् कपिलने आसुरि जिज्ञासुको किया था। और भगवान् कपिल जैसे आदि-विद्वान् द्वारा आसुरिके लिये साक्षात्कारपर्यन्त इन्हीं सूत्रोंका उपदेश परमार्थक हो सकता है।

(२) **पञ्चशिखाचार्यके सूत्र-** आसुरिने कपिल मुनिसे प्राप्त की हुई सांख्यकी शिक्षाका पञ्चशिखाचार्यको उपदेश किया, जिसने इस शास्त्रका विस्तार किया, इस प्रकारका वर्णन सांख्यकारिकामें आता है। इन सूत्रोंका ग्रन्थ लुप्त है। व्यासजीने अपने योग-दर्शनके भाष्यमें लगभग २१ सूत्रोंको कई स्थानोंपर उद्धृत किया है।

(३) वार्षगण्याचार्यप्रणीत **षष्टि-तन्त्र-** यह ग्रन्थभी नहीं मिलता है। ६० पदार्थोंका वर्णन होनेसे इसका नाम षष्टि-तन्त्र रखा गया था। ईश्वर कृष्ण आर्यने अपनी सांख्य-सप्ततिको षष्टि-तन्त्रके आधारपरही बनाया है। वे ७२ वीं कारिकामें लिखते हैं कि षष्टितन्त्रके सविस्तर विषयको सांख्य-सप्ततिमें संक्षिप्त किया गया है और उसकी आख्यायिकायें आदि छोड़ दी गई हैं। श्री व्यासजी महाराजने अपने योगदर्शनके भाष्यमें वार्षगण्याचार्यके वचनोंको कई स्थानोंमें लिखा है।

(४) **सांख्य-सप्तति** अर्थात् **सांख्य-कारिका** षष्टि-तन्त्रके आधारपर आर्यमुनि ईश्वरकृष्णद्वारा लिखा गया है। इसमें मुख्य ७० कारिका हैं, इस कारण इसका नाम सांख्य-सप्तति रखा गया है। इसपर वाचस्पति मिश्र द्वारा की हुई टीका सांख्य-तत्त्व-कौमुदी कहलाती है।

(५) सांख्य-दर्शन– जिसपर विज्ञान भिक्षुने प्रवचन-भाष्य किया है। यह सांख्य-दर्शनके नामसे प्रसिद्ध हो रहा है, किन्तु यह सांख्य-सप्ततिके आधारपर लिखा हुआ उससे पिछले समयका ग्रन्थ है। क्योंकि (१) इसमें बहुतसे सूत्र सांख्य-कारिकासे लिये हुए स्पष्ट प्रतीत होते हैं। (२) श्री शंकराचार्यने सांख्यकारिकाओंके अतिरिक्त इसके सूत्रोंको कहीं भी प्रमाणमें उद्धृत नहीं किया है। (३) वाचस्पति मिश्रने अन्य सब दर्शनों और सांख्यकारिका पर भी टीका की है। किन्तु इस ग्रन्थमेंसे एक भी सूत्रको प्रमाणरूपमें नहीं दिया है। इससे सिद्ध होता है कि इन सूत्रोंके संग्रहकर्ता विज्ञान भिक्षुही है, और बहुत संभव है कि इनमेंसे बहुतसे सूत्र उनके स्वयं बनाये हुए हों जैसा कि उनकी भूमिकामें उनके शब्दोंसे प्रतीत होता है।

कालार्क-भक्षितं सांख्य-शास्त्रं ज्ञानसुधाकरम्।
कलावशिष्टं भूयोऽपि पूरयिष्ये वचोऽमृतैः॥
(सां. प्र. भा. भू. ५)

अर्थ– ज्ञान अमृतको उत्पन्न करनेवाला सांख्य शास्त्र कालरूपी सूर्यद्वारा निगल लिया गया है। उसकी एक कला शेष रह गई है, उसको फिर मैं अमृतरूपी वचनसे पूरा करूंगा।

स्वयं विज्ञान भिक्षुने भी तत्त्व-समासकोही अपने सांख्य-दर्शनका आधार माना है, जैसा कि उन्होंने अपनी भूमिकामें लिखा है।

तत्त्वसमासाख्यं हि यत् संक्षिप्तं सांख्यदर्शनं तस्यैवं प्रकर्षेणास्यां निर्वचनम्।'

अर्थ– तत्त्व-समास नामी जो संक्षिप्त सांख्यदर्शन है उसीको इस (षडध्यायी सांख्यदर्शन) में खोलकर बतलाया गया है।

(६) श्वेताश्वतर उपनिषद् और श्रीमद्भगवद्गीता भी सांख्य और योगकेही ग्रन्थ हैं। श्वेताश्वतरमें उसके अभ्यन्तर रूप और गीतामें उसके अभ्यन्तर रूप और सिद्धान्तोंके अति-रिक्त कार्यक्षेत्रमें व्यावहारिक रूपको विशेषताके साथ दर्शाया गया है।

श्रीमद्-भागवतके तीसरे स्कन्धमें जो भगवान् कपिलने अपनी माताको उपदेश दिया है, वह भी सांख्य की उच्च कोटि की शिक्षा है।

(१) कपिल मुनि-प्रणीत तत्त्व-समास

(प्राचीन सांख्य दर्शन)

अथातस्तत्त्वसमासः॥ १॥

अर्थ– अब (दुःखोंकी निवृत्तिका साधन तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान है) इसलिये तत्त्वोंको संक्षेपसे वर्णन करते हैं।

व्याख्या– संसारमें प्रत्येक प्राणीकी यह प्रबल इच्छा पाई जाती है कि "मैं सुखी होऊं, दुःखी कभी न होऊं।" किन्तु सुखकी प्राप्ति बिना दुःखकी निवृत्तिके असम्भव है, क्योंकि दुःखकी निवृत्तिका नामही सुख है। इसलिये सुखके अभिलाषियोंको दुःखकी जड़ काट देना चाहिये। दुःखकी जड़ अज्ञान है। जितना अधिक अज्ञान होगा, उतनाही अधिक दुःख होगा। जितना कम अज्ञान होगा, उतनाही कम दुःख होगा। ज्ञान और अज्ञान तत्त्वोंके सम्बन्धसे है। जिस तत्त्वका अज्ञान होगा, उसीसे दुःख होगा। जिस तत्त्वका जितना यथार्थ ज्ञान होता जावेगा, उससे उतनीही दुःख-निवृत्ति-रूप सुखकी प्राप्ति होती जावेगी। जब सारे तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान हो जावेगा तो सारे तत्त्वोंसे अभय-रूप सुखका लाभ होगा। इस-लिये सारे तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञानही सारे दुःखोंकी जड़का काटना है। अतः सारे तत्त्वोंका संक्षेपसे विचार आरम्भ किया जाता है।

जड तत्त्व

संगति– दुःख-निवृत्तिकी इच्छा और प्रयत्न करनेवालेका दुःख स्वाभाविक धर्म नहीं हो सकता, क्योंकि यदि ऐसा होता तो वह उसकी निवृत्तिका यत्नही न करता। इससे सिद्ध होता है कि दुःखनिवृत्तिकी इच्छा करनेवालेसे भिन्न उससे विपरीत धर्मवाला कोई दूसरा तत्त्व है जिसका स्वाभाविक धर्म दुःख और जडता है। यदि यह कहा जाय कि दुःख-निवृत्तिकी इच्छा और प्रयत्न करनेवालाही एक अकेला चेतन तत्त्व है उससे भिन्न कोई दुसरा तत्त्व नहीं है। दुःखकी प्रतीति अविद्या, अज्ञान, भ्रम, अथवा मायासे होती है, तो ये अविद्या, अज्ञान, भ्रम अथवा माया भी स्वयं किसी भिन्न तत्त्वके अस्तित्वको सिद्ध करते हैं, जिसके ये स्वाभाविक धर्म हैं। यदि यह कहा जाय कि यह चेतन तत्त्वसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है तो ये उसके स्वाभाविक धर्म होनेसे दुःखकी कभी भी निवृत्ति नहीं हो सकेगी और उसके लिये किसी भी प्रकारका यत्न करना व्यर्थ होगा। यदि ऐसा माना जाय कि उस चेतन तत्त्वको ठीक ठीक न जाननेसे यह भ्रम इत्यादि हो रहा है, तो इससे भी किसी

भिन्न तत्त्वकी सिद्धि होती है, क्योंकि जानना किसी दूसरी वस्तुका होता है। सबके जाननेवालेको किससे जाना जा सकता है ? यथा- " विज्ञातारमरे केन विजानीयात् "

इससे सिद्ध होता है कि चेतन तत्त्वसे भिन्न एक जड तत्त्व है, उसका यथार्थ रूप समझानेके लिये अगले दो सूत्रोंमें उसको २४ अवान्तर भेदोंमें विभक्त करके दिखलाते हैं।

अष्टौ प्रकृतयः ॥ १ ॥ षोडश विकाराः ॥ २ ॥

अर्थ- (जड तत्त्वके प्रथम दो भेद प्रकृति और विकृति हैं, उनमेंसे) आठ प्रकृतियां हैं- प्रधान अर्थात् मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार और पांच तन्मात्राएं अर्थात् शब्द-तन्मात्रा, स्पर्श-तन्मात्रा, रूप-तन्मात्रा, रस-तन्मात्रा और गंध-तन्मात्रा ॥ २ ॥ और सोलह विकृतियां हैं- पांच स्थूलभूत-आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी और ग्यारह इन्द्रियां अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय- श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना और घ्राण और पांच कर्मेन्द्रिय- वाणी, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा और ग्यारहवां मन ॥ ३ ॥

व्याख्या- जिसके आगे कोई नया तत्त्व उत्पन्न हो उसको प्रकृति कहते हैं अर्थात् जो किसी नये तत्त्वका उपादान कारण हो। और जिसके आगे कोई नया तत्त्व उत्पन्न न हो उसको विकृति-विकार अर्थात् कार्य-कहते हैं। जड तत्त्वके चौबीस विभागोंमेंसे जो आठ प्रकृतियां बतलाई हैं, उनमेंसे प्रधान अर्थात् मूल प्रकृतिही एक केवल प्रकृति है, अन्य सात तो प्रकृति और विकृति दोनों हैं। अर्थात् महत्तत्त्व (समष्टिचित्त) प्रधान (मूल प्रकृति) की विकृति और अहंकार की प्रकृति है। अहंकार महत्तत्वकी विकृति और पांच तन्मात्राओं और ग्यारह इन्द्रियोंकी प्रकृति है। पांच तन्मात्राएं अहंकारकी विकृति और पांच स्थूल भूतोंकी प्रकृति हैं । ग्यारह इन्द्रियें अहंकारकी विकृतिएं हैं। इनके आगे नया कोई तत्त्व उत्पन्न नहीं होता। इसलिये स्वयं (विकृति) किसी की प्रकृति नहीं । अतः ये केवल विकृतिएं हैं। इसी प्रकार पांच स्थूलभूत पांच तन्मात्राओंकी विकृतिएं हैं। इनसे आगे कोई नया तत्त्व उत्पन्न नहीं होता। इसलिये स्वयं किसीकी प्रकृतिएं नहीं हैं । अतः ये केवल विकृतिएं हैं। यह चौबीसों भेद वास्तवमें एक जड तत्त्व " प्रधान " अर्थात् मूल प्रकृतिहीके हैं जो सक्रिय और चेतनारहित है।

जड तत्त्वके इन २४ भेदोंको साक्षात् करानेके पश्चात् ही भगवान् कपिलने इन दोनों सूत्रोंका जिज्ञासु आसुरिको उपदेश किया है।

जिससे कोई नया तत्त्व उत्पन्न हो उसे प्रकृति और जिससे आगे कोई नया तत्त्व उत्पन्न न हो उसे विकृति कहते हैं। विकृति रूपसे अव्यापी और व्यक्त (प्रकट) होती है, उससे उसकी प्रकृति अनुमानगम्य होती है जो उसमें व्यापी होनेसे उसकी अपेक्षा विभु होती है और उसमें अव्यक्त होनेके कारण उसकी अपेक्षा सूक्ष्म होती है।

ग्यारह इन्द्रियां और पांच स्थूलभूत अव्यापी और व्यक्त (प्रकट, प्रत्यक्ष) हैं, इनसे आगे कोई नया तत्त्व उत्पन्न नहीं होता, इसलिये ये केवल विकृति हैं। इनकी प्रकृति अनुमानगम्य है, जो इनमें व्यापी और अव्यक्त (अप्रकट) है। स्थूल शरीरसे अन्तर्मुख होनेपर ध्यानकी पहिली परिपक्व अवस्थामें दिव्य निर्मल शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धका साक्षात्कार होता है। यही पांचों तन्मात्राएं पांचों स्थूल भूतोंकी प्रकृति हैं, किन्तु अब व्यक्त (प्रकट) हो जानेसे ये प्रकृति नहीं रहीं, विकृति हो गईं, इसलिये इनकी अव्यक्त प्रकृति अनुमानगम्य माननी पडेगी। इन तन्मात्राओंसे भी अन्तर्मुख होनेपर ध्यानकी परिपक्व अवस्थामें केवल " अहमस्मि " वृत्ति रह जाती है। ये ग्यारह इन्द्रियों और पांचों तन्मात्राओंकी प्रकृति " अहंकार " का साक्षात्कार है, किन्तु अब व्यक्त (प्रकट) हो जानेसे ये विकृतिरूप हो गई, इसलिये इसकी अव्यक्त प्रकृति भी अनुमानगम्य माननी पडेगी। इस ' अहंवृत्ति ' से भी अन्तर्मुख होनेपर केवल " अस्मि " वृत्ति रह जाती है। यह महत्तत्त्व अहंकार की प्रकृति है, किन्तु अब यह महत्तत्त्व भी व्यक्त होनेसे प्रकृति न रहा, विकृति हो गया, इसलिये इसकी भी कोई प्रकृति अनुमानगम्य माननी पडती है। इससे आगे किसी नये जड तत्त्वका साक्षात्कार नहीं होता, केवल चेतनतत्त्व रह जाता है, इसलिये यह अनुमानगम्य प्रकृति ही अव्यक्त प्रधान अथवा मूल प्रकृति है। इस प्रकार कपिल मुनिके बतलाये हुये जड तत्त्वके ये चौबीसों अवान्तर भेद केवल बुद्धि अथवा तर्ककी उपज नहीं हैं, किन्तु अनुभवसिद्ध हैं।

संगति- उपर्युक्त रीतिसे जड तत्त्वके अवान्तर भेदोंका अनुभव करनेके पश्चात् जो चेतन तत्त्व शेष रह जाता है,

उसका वर्णन अगले चौथे सूत्रमें करते हैं। उसके दो भेद हैं- एक जड तत्त्वसे मिला हुआ अर्थात मिश्रित=शबल=अपर=सगुण स्वरूप, दूसरा शुद्ध=पर=निर्गुण स्वरूप। मिश्रित के भी दो भेद हैं। एक व्यष्टि रूपसे अनन्त शरीरों (पिण्डों) के सम्बन्धसे, दूसरा समष्टिरूपसे सारे ब्रह्माण्डके सम्बन्धसे। इन तीनों भेदोंका वर्णन एक पुरुष शब्दसे अगले सूत्रमें करते हैं।

चेतन तत्त्व- पुरुष

पुरुषः ॥ ४ ॥

पुरुषके अर्थोंका स्पष्टीकरण-पचीसवां चेतन तत्त्व पुरुष है जो तीन अर्थोंका बोधक है।

(१) चेतन तत्त्व व्यष्टि (पिण्ड) शरीरोंसे मिश्रित, यथा-

" स य एषोऽन्तर्हृदय आकाशः। तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः। अमृतो हिरण्मयः। "

अर्थ-यह जो हृदयके अन्दर आकाश है, उसमें यह पुरुष है जो मनका मालिक, अमृत और ज्योतिर्मय है। अन्तःकरणोंके अनन्त और परिच्छिन्न होनेसे यह पुरुष अनन्त और परिच्छिन्न कहलाते हैं और परिच्छिन्नताके कारण अल्पज्ञ हैं। इनकी संज्ञा जीव भी है। इनकी अपेक्षासे चेतन तत्त्व आत्मा कहलाता है।

(२) चेतन तत्त्व (ब्रह्माण्ड) समष्टि जगत्से मिश्रित, यथा-

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम्।
(श्वेता० ३।१४)

अर्थ- वह पुरुष हजारों सिर, हजारों नेत्र और हजारों पांववाला है। वह इस ब्रह्माण्डको चारों ओरसे घेरकर भी दस अंगुल उससे परे खड़ा है। समष्टि अन्तःकरणके एक और विभु होनेसे वह एक और सर्वव्यापक है और सर्व-व्यापकताके कारण सर्वज्ञ है। इसकी संज्ञा ईश्वर, पुरुषविशेष, सगुण ब्रह्म, अपर ब्रह्म और शबल ब्रह्म है। इसकी अपेक्षासे चेतन तत्त्व परमात्मा कहलाता है।

(३) शुद्ध चेतन तत्त्व जड तत्त्वसे बिखरा हुआ केवल शुद्ध ज्ञानस्वरूप है यथा-

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥
(ऋ० १०-४०-३)

अर्थ- यह इतनी बडी तो उसकी महिमा है। पुरुष (परमात्मा, शुद्ध चेतन तत्त्व) इससे कहीं बड़ा है। सारे भूत इसका एक पाद हैं। उसके तीन पाद अमृतस्वरूप अपने प्रकाशमें हैं। इसकी संज्ञा शुद्ध ब्रह्म, निर्गुण ब्रह्म, परब्रह्म और परमात्मा है। यह जड तत्वकी सारी उपाधियों-समष्टि, व्यष्टि, एकत्व, बहुत्व, परिच्छिन्नता, व्यापकता इत्यादि से परे केवल शुद्ध ज्ञानस्वरूप है।

जीव ईश्वर नहीं हो सकता, किन्तु उसकी उपासनाद्वारा (जिन गुणोंद्वारा उसकी उपासना की जावे) उसके तद्रूप होकर उसके अनन्त ज्ञान, धर्म, ऐश्वर्य, वैराग्य इत्यादि गुणोंको ब्रह्मलोकमें उपयोग करता है।

इस मुक्तिकी अवस्थामें जीव संकल्पमय होता है, यथा—

शृण्वन् श्रोत्रं भवति.........ऽहङ्कारो भवति ॥
(शतपथ कां० १४ (४।२।१७)

स यदि पितृलोककामो भवति संकल्पादेवास्य पितरः समुपतिष्ठन्ति ...तेन सम्पन्नो महीयते ॥
(छान्दोग्य० ८।२।१ से १० तक)

सङ्कल्पादेव तु तच्छ्रुतेः ॥ ८ ॥

अत एव चानन्याधिपतिः ॥ ९ ॥
(ब्रह्मसूत्र ४।४)

इस मुक्तिका अनुभव विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि की ऊंची अवस्थामें होता है।

आत्मा और परमात्मामें अभिन्नता है। दोनों एक शुद्ध चेतन तत्त्व ज्ञानस्वरूपके सूचक हैं। आत्मा पिण्डकी अपेक्षा से और परमात्मा ब्रह्माण्डकी। असम्प्रज्ञात समाधिमें सर्व वृत्तियों का निरोध, दूसरे प्रकार की मुक्ति का अनुभव है। असम्प्रज्ञात समाधिमें सर्व वृत्तियोंके निरोध होनेसे शुद्ध चेतन स्वरूपमें अवस्थिति होती है, किन्तु चित्तमें संस्कार शेष रहनेके कारण पुनः व्युत्थानमें आना होता है। चित्तमें शेष संस्कार की निवृत्तिपर चित्तके अपने कारणमें लीन हो जानेपर जो पुनः व्युत्थानमें न आनेवाली शुद्ध चेतन स्वरूपमें अवस्थिति है, वही दूसरी सर्वोत्तम मुक्ति है। यथा—

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठां
देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा
परेऽव्यये सर्व एकीभवन्ति ॥ ७ ॥

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रे
अस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
तथा विद्वान्नामरूपाद् विमुक्तः
परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ ८ ॥
(मुण्डक ३।२)

अर्थ– उनकी पंद्रह कलाएं अपने अपने कारणोंमें चली जाती हैं और उनकी सारी इन्द्रियां अपने सदृश देवताओंमें चली जाती हैं । उनके कर्म और विज्ञानमय आत्मा सब उस परसे अव्यय ब्रह्ममें एक हो जाते हैं ॥ ७॥ जिस प्रकार बहती हुई नदियां समुद्रमें अस्त हो जाती हैं और अपना नाम रूप खो देती हैं, उसी प्रकार (शुद्ध निर्गुण) ब्रह्मका जाननेवाला नाम रूपसे अलग होकर परेसे परे जो दिव्य पुरुष है, उसको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न
तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति ॥
(बृह० ४।४।६)

अर्थ— जो कामनाओंसे रहित है, जो कामनाओंसे बाहर निकल गया है, जिसकी कामनायें पूरी हो गई हैं या जिसको केवल आत्माकी कामना है, उसके प्राण (प्राण और इन्द्रिय) नहीं निकलते हैं (निकलकर दूसरा देह धारण करनेको नहीं जाते हैं), वह ब्रह्म ही हुआ ब्रह्मको पहुंचता है ।

ब्रह्मके शबल स्वरूपकी उपासना और उसका साक्षात्कार कारण शरीर (चित्त) से होता है, शुद्ध चेतन तत्त्वमें कारण शरीर तथा कारण जगत् (प्रकृति अथवा माया) परे रह जाता है ।

यहां यह भी बता देना आवश्यक है कि स्वरूप अवस्थितिमें पहुंच कर भी जो योगी सब प्राणियोंके कल्याणका संकल्प (संसारको दिव्य बनाना) अपने चित्तमें बनाए रखते हैं, इनके चित्तोंके बनानेवाले गुण अपने कारणमें लीन नहीं होते । बल्कि यह चित्त अपने विशाल शुद्ध स्वरूपसे ईश्वरके विशुद्ध सत्त्वमय चित्तमें, जिसमें वेदोंका ज्ञान और सारे प्राणियोंके कल्याणका संकल्प विद्यमान हैं, (समान संकल्प होनेसे) लीन रहते हैं और वे शुद्ध चैतन्य परमात्म स्वरूपमें अवस्थित रहते हैं । ईश्वरीय नियमानुसार संसारके कल्याणमें जब उनकी आवश्यकता होती है, तो वे अपने शुद्ध स्वरूपसे इस भौतिक जगत्में अवतीर्ण होते हैं– दूसरे शब्दोंमें अवतार लेते हैं । यथा—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

अर्थ– हे भारत ! जब जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब तब मैं अपने आपको प्रकट करता हूं । (अपने शुद्ध स्वरूपसे शबल-स्वरूपमें ईश्वरकी ओरसे अवतरण करता हूं, अर्थात् भौतिक जगत्में अवतार लेता हूं ।) सज्जनोंकी रक्षा करनेके लिये और दूषित कार्य करनेवालोंका नाश करनेके लिये तथा धर्म-स्थापन करनेके लिये युगयुगमें प्रकट होता हूं ।

इस दूसरी प्रकारकी मुक्तिको सांख्य और योगमें कैवल्य कहते हैं । सांख्य और योगको यह कैवल्य जिसमें संसारका बीज मात्र भी न रहे, अभिमत है । इसलिये उन्होंने पुरुष सं० १ अर्थात् जीवात्मा जो अनन्त अन्तःकरणोंके सम्बन्ध से अनन्त है, जड तत्त्व अर्थात् ज्ञानरहित सक्रिय त्रिगुणात्मक प्रकृति, और पुरुष सं० ३ अर्थात् परमात्म–तत्त्व जो शुद्ध चेतन निष्क्रिय ज्ञानस्वरूप है, उन तीनोंका ही विशेष रूपसे वर्णन किया है । सांख्य पुरुष (सं० १ अर्थात जीवोंको जो संख्यामें अनन्त हैं) ज्ञान और संन्यास (त्याग) द्वारा जड तत्त्व अर्थात् त्रिगुणात्मक प्रकृतिसे पूर्णतया भिन्न करके पुरुष सं० ३ अर्थात् परमात्मतत्त्व तक ले जाता है, इसलिये उसमें पुरुष सं० १ अर्थात् जीवोंको बहुत्व अनन्त संख्यावाला, और पुरुष सं० ३ अर्थात् परमात्मतत्त्वको क्रियारहित शुद्ध ज्ञान स्वरूपके विशेषणके साथ वर्णन किया गया है ।

योग पुरुष सं० १ अर्थात् जीवोंको पुरुष सं० २ अर्थात् पुरुष विशेष=ईश्वरके प्रणिधानद्वारा पुरुष सं० ३ अर्थात् परमात्मतत्त्वतक पहुंचाता है । इसलिये उसमें पुरुष सं० २ अर्थात् ईश्वरकी जड तत्त्वके साथ महिमाको विशेष रूपसे दर्शाया है ।

चेतन तत्त्वमें जड तत्त्व जैसा कोई परिणाम तथा अवान्तर भेद नहीं है । अतः शुद्ध चेतन तत्त्व देश, काल, जाति तथा संख्याकी सीमासे भी परे है । जड तत्त्वकी उपाधिसे उसमें

संख्याका आरोप कर लिया जाता है। इसलिये विकल्पसे पुरुषमें बहुत्व कहा जाता है । अर्थात् व्यष्टि चित्तोंमें प्रतिबिम्बित चेतनमें, चित्तके अन्य धर्मोंके समान बहुत्व (संख्या) को भी आरोप कर लिया जाता है; और स्वरूप अवस्थिति अथवा कैवल्यकी अवस्थामें चित्तके अन्य सब धर्मोंके साथ बहुत्व (संख्या) की भी निवृत्ति हो जाती है। चेतनसे प्रतिबिम्बित महत्तत्त्वमें जब समष्टि अहंकार बीजरूपसे छिपा हुआ हो तो उसको समष्टि अस्मिता कहते हैं । उसमें समष्टि अहमूत्व क्षोभ-रूप परिणाम पांच तन्मात्राएं अर्थात् किसी दूसरे तत्त्वसे न मिला हुआ शब्द-द्रव्य, स्पर्श-द्रव्य, रूप-द्रव्य, रस-द्रव्य और गंध-द्रव्य, हैं।

इसी प्रकार अहंकारसे ही ग्यारह इन्द्रियें उत्पन्न होती हैं अर्थात् जब " मैं हूं " की वृत्तिका उत्पादक सामान्य द्रव्य उत्पन्न हुआ तो " वही मैं देखता हूं," " वही मैं सुनता हूं" इत्यादि विशेष वृत्तिके उत्पादक विशेष द्रव्यमें परिणत हुआ । उपर्युक्त महत्तत्व (समष्टि चित्त) में प्रतिबिम्बित चेतन हिरण्यगर्भ पुरुषका वर्णन हुआ । इसी प्रकार व्यष्टि चित्तोंमें प्रतिबिम्बित चेतन, अन्य पुरुषोंको समझ लेना चाहिये ।

अहंकारमें विशुद्ध सत्त्वको समष्टि अहंकार और रजस् तथा तमस्से मिश्रित सत्त्वको व्यष्टि अहंकार समझना चाहिये । अतः समष्टि चित्त विशुद्ध सत्त्वमय चित्त और व्यष्टि चित्त केवल सत्त्वचित्त कहलाते हैं। चित्तोंमें समष्टि, व्यष्टि और अनेकत्व अहंकारकी अपेक्षासे समझना चाहिये ।

तन्मात्राओंके मेलसे स्थूलभूत (महाभूत) उत्पन्न होते हैं । शब्द-तन्मात्राके साथ किंचित् दूसरे तन्मात्राओंके मेलसे शब्द गुणवाला आकाश उत्पन्न होता है । इसी प्रकार स्पर्श-तन्मात्राकी अधिकतासे स्पर्श-गुणवाला वायु, रूप-तन्मात्राकी अधिकतासे रूप-गुणवाला अग्नि, रस-तन्मात्राकी अधिकतासे रस-गन्ध-गुणवाली पृथ्वी उत्पन्न होती है ।

इन पांचों स्थूल भूतोंसे आगे कोई नया तत्त्व उत्पन्न नहीं होता । मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, धातु, दूध, दही, आदि सब इन्हींके रूपान्तर हैं । इस लिये ये निरे विकार अर्थात् विकृति हैं।

जड तत्त्वमें सब प्रकारके परिणामोंका निमित्त कारण पुरुष है और इन सारे परिणामोंका प्रयोजन भी पुरुषका भोग और अपवर्गही है । चेतन तत्त्व, जड तत्त्व, जड तत्त्वकी चेतन तत्त्वसे सन्निधि, उस सन्निधिसे क्षोभको प्राप्त होते हुए जड तत्त्वका चौबीस तत्त्वोंमें विभक्त होना, तथा पुरुषका प्रयोजन, भोग और अपवर्ग ये सब अनादि अर्थात् कालकी सीमासे परे हैं ।

संगति- (शंका) जैसे अव्यक्त प्रधान, व्यक्त महत्तत्त्वादिका उपादान कारण हो सकता है, वैसेही ज्ञानस्वरूप चेतन तत्त्व जड तत्वका उपादान कारण हो सकता है, इसलिये जड तत्त्वको चेतन तत्त्वसे पृथक मानना ठीक नहीं है। (समाधान) जडतत्वप्रधान अव्यक्त अर्थात् मूल प्रकृति त्रिगुणात्मक है । सत्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणोंकी न्यूनाधिकतासे विषमताको प्राप्त होती हुई वह चौबीस अवान्तर भेदोंमें विभक्त हो रही है, किन्तु चेतन तत्व निर्गुण शुद्ध ज्ञानस्वरूप है, जिसमें न कोई विषमता हो सकती है, न परिणाम । (शंका) त्रिगुणात्मक मायासे जगत्की उत्पत्ति होती है।(समाधान) यह केवल शब्दोंका बदल है अर्थात् ऐसा माननेमें प्रकृतिके स्थानमें माया शुद्ध चेतन तत्वसे भिन्न जगत्का उपादान-कारण ठहरेगी । यदि मायाको शुद्ध चेतन तत्व (निर्गुण, निराकार, शुद्ध ब्रह्म) से अभिन्न उसकीही एक अनिर्वचनीय शक्ति मान ली जावे, तो परब्रह्ममें द्वैतकी सिद्धि होगी और यह द्वैत उसका स्वाभाविक गुण होनेसे किसी प्रकार भी पृथक् नहीं हो सकेगा और अद्वैतपरक महावाक्य तथा वेद-शास्त्र सब व्यर्थ हो जाएंगे । इसलिये तीन गुण जिनकी विषमताका कारण प्रधान मूल प्रकृति चौबीस अवान्तर भेदोंमें विभक्त हो रही है। अगले सूत्रमें वर्णन करते हैं-

प्रकृतिके तीन गुण-

त्रैगुण्यम् ॥ ५ ॥

अर्थ- (चौबीसों जड तत्व सत्व रजस् और तमस्) तीन गुणवाले हैं ।

व्याख्या- सत्वका स्वभाव प्रकाश, रजस्का क्रिया और तमस्का स्थिति है । ये तीनों स्वभाव प्रत्येक वस्तुमें पाये जाते हैं । जो वस्तु स्थिर है उसमें क्रिया उत्पन्न हो जाती है और वेगवाली क्रियाके पीछे उसमें प्रकाश प्रकट हो जाता है । जो प्रकाशवाली है, वह समयान्तरमें प्रकाशहीन हो जाती है और अन्तमें क्रियाहीन भी हो जाती है । जब एक वस्तु स्थिर होती है तब उसमें तमस् प्रधान होता है, रजस् और सत्व गौण रूपसे रहते हैं। और अपने समयपर उसमें प्रगट हो जाते है। जब वह वस्तु क्रियावाली होती है, तो उसमें रजस् प्रधान

*

होता है, सत्व और तमस् गौण होते हैं । फिर वही वस्तु जब प्रकाशवाली हो जाती है, उसमें सत्व प्रधान हो जाता है, रजस् और तमस् गौण । इस प्रकार सब वस्तुओंमें तीनों गुण प्रधान या गौण रूपसे विद्यमान रहते हैं। पुरुषसे अतिरिक्त जो कुछ भी है वह सब त्रिगुणात्मकही है । किन्तु वह सब तीनों गुणोंका विकृत रूपही है, यथा-

गुणानां परमं रूपं न दृष्टिपथमृच्छति ।
यत्तु दृष्टिपथं प्राप्तं तन्मायेव सुतुच्छकम् ॥
(वार्षगण्याचार्य, षष्टी-तन्त्र)

अर्थ- गुणोंका असली रूप अर्थात् साम्य-परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होता, जो (विषय-परिणाम) दृष्टिगोचर होता है वह मायासा है और विनाशी है ।

गुणोंका परिणाम

गुण परिणामशील हैं । परिणाम सांख्यका पारिभाषिक शब्द है। परिणामके अर्थ हैं तबदीली अर्थात् पहले धर्मको छोडकर दूसरे धर्मका ग्रहण करना । परिणाम दो प्रकारका होता है। एक साम्य अर्थात् स्वरूप-परिणाम, जैसे दूधमें दूधके निर्विकार बने रहनेकी अवस्थामें होता है। दूसरा विषम अर्थात् विरूप-परिणाम, जैसे दूधमें एक निश्चित समयके पश्चात् खटास आदि विकारके आनेसे होता है। विषम अर्थात् विरूप-परिणामही प्रत्यक्ष होता है। उस प्रत्यक्षसे साम्य-परिणामका अनुमान किया जाता है।

तीनों गुणोंका साम्य-परिणामही अनुमानगम्य अव्यक्त अर्थात् प्रधान मूल प्रकृति अथवा केवल प्रकृति है।

(१) गुणोंका प्रथम विषम परिणाम महत्तत्त्व-

चेतन-तत्वसे इस मूल प्रकृतिमें एक प्रकारका क्षोभ होकर सत्वमें क्रियामात्र रजका और उस क्रियाको रोकने मात्र तमका प्रथम विषम परिणाम हो रहा है, जो महत्तत्व (समष्टिरूपमें एक विशुद्ध सत्वमय चित्त और व्यष्टिरूपमें अनन्त सत्व चित्त) है जिसमें कर्तापनेका अहंकार बीजरूपसे छिपा हुआ है। महत्तत्त्वमें निर्मल सत्व होनेके कारण ज्ञान-स्वरूप चेतन तत्वके प्रकाशको ग्रहण करनेकी योग्यता है । और चेतन तत्वमें महत्तत्वमें अपने ज्ञानके प्रकाशको डालनेकी योग्यता है।

महत्तत्वके ज्ञान-स्वरूप चेतन तत्वसे प्रकाशित होनेका गीतामें अति सुन्दर शब्दोंमें वर्णन किया गया है।

मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥
(गीता अ० ९, श्लोक १०)

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥
(गीता अ० १४, श्लोक ३)

सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥
(गीता अ० १४, श्लोक ४)

अर्थ- हे अर्जुन, मेरे आश्रय करके प्रकृति चराचरसहित सब जगत्को रचती है। इस कारणसे जगत् परिवर्तित होता रहता है।

हे अर्जुन, मेरी योनि (गर्भ रखनेका स्थान)महत्तत्व है, उसमें मैं गर्भ रखता हूं (अपने ज्ञानका प्रकाश डालता हूं ।) और उसी (जड-चेतनके संयोग) से सब भूतोंकी उत्पत्ति होती है।

हे अर्जुन, सब योनियोंमें जो शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सब की योनि महत्तत्व है और उनमें बीजको डालनेवाला मैं (चेतनतत्त्व) पिता हूं।

इसीलिये हिरण्य-गर्भके लिये जो चेतन तत्वकी महत्तत्वके सम्बन्धसे संज्ञा है, वेदोंमें इस प्रकार कहा गया है-

हिरण्यगर्भः समवर्ततात्रे
भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।

अर्थ— हिरण्य-गर्भ ही पहले उत्पन्न हुए, जो समस्त भूतोंके पति थे ।

जिस प्रकार महत्तत्व चेतन तत्वके ज्ञानके प्रकाशको ग्रहण कर रहा है, उसको यथार्थ रूपसे समझनेके लिये न तो इस भौतिक जगत्में शब्द मिल सकते हैं, और न कोई सर्वांशमें ठीक घटनेवाला उदाहरण। फिरभी इसको तीन प्रकारसे बतलाया गया है, जिस प्रकार वायु भुवनोंमें व्यापक है, इसी प्रकार चेतन तत्त्व महत्तत्वमें व्यापक हो रहा है, यथा-

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ (कठ० २।५।१०)

अर्थ— जिस प्रकार एक वायु-तत्व सारे भुवन में प्रविष्ट होकर रूप रूपमें प्रतिरूप हो रहा है, इसी प्रकार एक आत्मा जो सबका अन्तरात्मा है, रूप रूपमें प्रतिरूप हो रहा है और अपने शुद्ध चेतन स्वरूपसे बाहर भी है।

(२) जैसे सूर्य जलाशयोंमें प्रतिबिम्बित हो रहा है, इसी प्रकार ज्ञानस्वरूप चेतन तत्व महत्तत्व (विशुद्ध सत्वमय समष्टि चित्त, तथा व्यष्टि अनन्त सत्व चित्तोंमें) में प्रतिबिम्बित हो रहा है। यथा—

एक एव तु भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥
(ब्रह्मबिन्दु उप. १२)

अर्थ— एकही भूतात्मा भूत भूतमें विराजमान है, जिस प्रकार एकही चन्द्रमा जलमें अनेक होकर दीखता है। इसी प्रकार एकही आत्मा अनेक रूपमें (समष्टि विशुद्ध सत्वमय चित्तमें एकत्र-भावसे और व्यष्टि सत्व चित्तमें बहुत्व-भावसे) प्रतिरूप हो रहा है।

(३) जैसे चुम्बक पत्थरकी सन्निधिसे लोहेमें क्रिया उत्पन्न होती है, इसी प्रकार चेतन तत्वके ज्ञानसे प्रकाशित होनेके कारण महत्तत्व में नियम और व्यवस्थापूर्वक क्रिया हो रही है। यथा—

निरिच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोहः प्रवर्तते।
सत्तामात्रेण देवेन तथा चायं जगज्जनः ॥
(सां. प्र. भा. ८।८७)

अर्थ— जैसे बिना इच्छावाले चुम्बक के स्थित रहने मात्र से लोहा प्रवृत्त होता है, वैसेही सत्ता मात्र देव (परमात्मा) से जगत्की उत्पत्ति आदि होती है।

आभ्यन्तर दृष्टि रखनेवाले तत्ववेत्ताओंके लिये ये तीनों एकार्थक और पर्यायवाची शब्द हैं।

चेतन तत्वके महत्तत्वमें प्रतिबिम्बित होने और बीजरूप से छिपे हुए विशुद्ध सत्वमय चित्त में समष्टि अहंकारका और सत्व चित्तोंमें व्यष्टि अहंकारोंके क्षोभ पाकर अहंभावसे प्रकट होनेको उपनिषदोंमें अनेक प्रकारसे वर्णन किया है। यथा—

सोऽकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति।
स तपोऽतप्यत।
स तपस्तप्त्वा इदं सर्वमसृजत। यदिदं किञ्च तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत। (तैत्तिरीय ब्रा० अनु.६)

अर्थ— उसने कामना की कि, मैं बहुत हो जाऊं, मैं प्रजावाला होऊं। उसने तप तपा। तप तपनेसे पीछे उसने इस सब को रचा जो कुछ यह है। इसको रचकर वह इसमें प्रविष्ट हुआ। (यह स्पष्ट है कि अपने को अपनेआप रचना और अपनेमें अपनेको प्रवेश करना ये दोनों असंभव हैं। क्योंकि ये दोनों क्रियायें कर्तासे अन्य किसी दूसरी वस्तुकी अपेक्षा रखती है और त्रिगुणात्मक प्रकृतिही है।)

(१) महत्तत्वका विषम परिणाम अहंकार—

पुरुष (चेतन तत्व) से प्रतिबिम्बित महत्तत्वही सत्वमें रज और तमकी अधिकतासे विकृत होकर अहंकाररूपसे व्यक्त-भावमें बहिर्मुख हो रहा है। इस अहंकारसेही कर्तापनेका भाव आरम्भ होता है। यथा—

अहंकारः कर्ता न पुरुषः ॥ (सांख्य. ६।५४)

कर्तापना अहंकारमें है, न कि पुरुषमें। महत्तत्वका विषम-परिणाम अहंकारही अहंभावसे एकत्व, बहुत्व, व्यष्टि, समष्टि-रूप सर्व प्रकारकी भिन्नता उत्पन्न करनेवाला है। विभाजक अहंकारहीसे ग्रहण और ग्राह्य रूप दो प्रकारके विषम परिणाम उत्पन्न हो रहे हैं।

(२) अहंकारका विषम परिणाम ग्रहणरूप ग्यारह इन्द्रियें—

महत्तत्वसे व्याप्य विभाजक अहंकारही सत्वमें रज और तमकी अधिकतासे विकृत होकर परस्पर भेदवाली ग्रहणरूप पांच ज्ञान-इन्द्रियों, पांच कर्मेन्द्रियों और ग्यारहवें इनके नियन्ता मनके रूपमें व्यक्त होकर बहिर्मुख हो रहा है।

(४) अहंकारका विषम परिणाम ग्राह्य रूप तन्मात्राएं—

महत्तत्वसे व्याप्य विभाजक अहंकारी सत्वमें रज और तमकी अधिकतासे विकृत होकर परस्पर भेदवाली और ग्राह्य रूप पांच तन्मात्राओंके रूपमें व्यक्त भावसे बहिर्मुख हो रहा है।

(५) अहंकारके विषम परिणाम ग्राह्यरूप स्थूलभूत

विभाजक अहंकारसे व्याप्य पांचों तन्मात्राएंही सत्वमें रज और तमकी अधिकतासे विकृत होकर परस्पर भेदवाले पांचों स्थूल भूतोंमें व्यक्त भावहीसे बहिर्मुख हो रही हैं।

इस प्रकार महत्तत्वकी अपेक्षा अहंकारमें, अहंकारकी अपेक्षा पांचों तन्मात्राओंमें और ग्यारह इन्द्रियोंमें और तन्मात्राओंकी अपेक्षा स्थूल भूतोंमें क्रमशः रज तथा तमकी मात्रा बढती जाती है और सत्वकी मात्रा कम होती जाती है यहां तक कि स्थूल जगत् और स्थूल शरीरमें रज तथा तमकाही व्यवहार चल रहा है। सत्व केवल प्रकाश मात्रही रहा है। यहां यह भी बतला देना आवश्यक है कि महत्तत्वमें प्रतिबिम्बित अथवा प्रकाशित चेतन तत्व (आत्मा=परमात्मा) भी इस राजसी-तामसी आवरणोंसे ढंका हुवा भौतिक शरीर तथा भौतिक जगत् ये केवल झलक मात्रही दिखलाई देता है। इसीलिये उपनिषदोंमें पुरुषका निवासस्थान चित्तमें, जिसका विशेष स्थान आनुमानिक अंगुष्ठमात्र हृदय है, यह बतलाया गया है और सांख्य तथा योग द्वारा उसकी प्राप्तिके उपाय स्थूल भूत, तन्मात्राएं, अहंकार और महत्तत्वमें क्रमशः अन्तर्मुख होते हुए स्वरूप अवस्थित होना बतलाया है।

जिस प्रकार उत्तर-मीमांसाके प्रथम चार सूत्र वेदान्तकी चतुःसूत्री कहलाते हैं, इसी प्रकार तत्वसमासके "अष्टौ प्रकृतयः" "षोडश विकाराः" "पुरुषः" "त्रैगुण्यं" ये चार सूत्र सांख्यकी चतुःसूत्री हैं जिनका कपिल मुनिने सारे ज्ञेय पदार्थोंका जिज्ञासु आसुरिको समाधि अवस्थामें अनुभव करके उपदेश किया है।

वेद--सूक्तावलि

(१)

दृते दृंह मा। ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम्
ज्योक्ते सन्दृशि जीव्यासम्॥ (यजु. ३६।१९)

हे सकल दोष निवारक परमेश्वर ! मुझे दृढ बना, तेरे सम्यक् दर्शनमें चिर कालतक जीऊं, तेरे दिये ज्ञान-प्रकाशमें चिर कालतक जीऊं।

बलपते ! बल दो मुझे
देखूं तुझे हर स्थानमें,
निज हृदयमें, सब जनोंमें
जगत्में हर काममें ॥
दो प्रभो ! विश्वास ऐसा,
दृढ रहूं नित स्थिर रहूं मैं,
शक्ति-संयुत नम्र हो,
कर्तव्य नित करता रहूं मैं॥
देखता तुझको सभीमें
सजग हो धरता रहूं—
शुभ कामना, नित सर्व हितके
कर्मही करता रहूं ॥
प्रेमपूर्ण दृष्टि तेरी
नित्यही मुझ पर रहे,
स्नेहयुक्त मंगल-भरी
मुझपर सदा तव कर रहे ॥
पूर्ण आयु भर निरंतर
स्मरण तव करता रहूं
तुम देखते हो काम मेरे
भाव यह धरता रहूं ॥
मुदित मन सुन्दर सुमन
सब कर्म तव अर्पण करूं
निर्भिक हो निर्भ्रान्त हो,
जीवन तेरे अर्पण करूं ॥
अन्तःकरणमें ध्यान तेरा
धर जीऊं बढता रहूं।
विकसित करूं मैं दिव्यता
सुचका भला करता रहूं ॥

(२)

त्वं हि अग्ने अग्निना, विप्रो विप्रेण,
सत् सता, सखा सख्या समिध्यसे॥
(ऋ० ८,४३,१४)

हे अग्ने ! तू निस्संदेह अग्निद्वारा प्रदीप्त किया जाता है, तू विप्र परम ज्ञानी, मुझ ज्ञानीद्वारा तू सत्, श्रेष्ठ मुझ साधु-श्रेष्ठद्वारा और तू सच्चा सखा, मुझ सखाद्वारा प्रदीप्त किया जाता है, प्रकाशित किया जाता है !!!

आदर्श है सद्‌गुणोंका,
तेजकी और ज्ञानकी ।
सत्यका और प्रेमका
सच्चा सुहृद् सम्मानका॥
भावना मुझसे उदय हो
भाव तेरा हृदयमें
आत्मज्योति जाग जावे
हो उजाला हृदयमें ॥
हृदय आतुर हो उठे,
हो तीव्र इच्छा मिलनकी।
तू हो प्रकाशित हृदयमें
दीखे छटा तव किरणकी ॥
मेल ऐसा सुलभ हो
ज्यों ज्ञानमें ज्ञानी मिले
सत्‌में मिले सत् जन सदा
प्रेममें प्रेमी मिले ॥

(३)

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्, विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम॥ (यजु० ४०।१६)

हे सबको आगे ले जानेवाले सर्व-प्रकाशक प्रभो ! हमें ऐश्वर्य-प्राप्तिके लिए सुमार्गसे चला। हे देव, अन्तर्यामिन् ईश्वर ! हमारे सब विचारों आचारोंको आप जानते हैं। हमसे कुटिल दोषको दूर करो, तुझे हम भक्तिभावसे नम्रता-पूर्ण हृदयके पवित्र भाव अर्पण करें॥

सर्वज्ञ हे प्रभु पूर्ण भगवन् ! शरण अपनी दीजिये,
प्रकाशमय हे दिव्य ज्योति, सुपथगामी कीजिये ॥
दीजिये निज प्रेरणा, नित प्रेममय कल्याणमय,
हे अग्रणी, आगे मुझे नित, सुपथपर कर दीजिये ॥
जिस मार्गमें आचरण सबका, श्रीपति सबको धरें,
सन्मार्ग ऐसा सामने ऐश्वर्ययुत कर दीजिये ॥
चर अचर सब जगत्को, धारण तुम्हीं होकर रहे,
हे नियन्ता, सर्व-प्रेरक, शरण अपनी दीजिये ॥
सब हृदयमें वास तेरा, जगत्में व्यापक तुम्हीं,
जानते सब भावनाएं, संकल्प शुभ कर दीजिये ॥
कुटिलता छल कपटसे, रखकर हमें नितही अलग,
ऐश्वर्ययुत सबको बनाकर, शरणमें ले लीजिये ॥
दीजिये नित शरण अपनी, कीजिये रक्षा सदा,
पाप हमको छू न पाए, नियम ऐसा कीजिये ॥
पापसे हो अलग हम नित, प्रेममें तेरे रमें,
आनन्द पूरण मुदित मन, सुन्दर सुमन कर दीजिये ॥
आनन्दमय ! आनन्दमें, फूलें फलें हम नित्यही,
नम्रतासे युक्त शक्ति दे, कृतारथ कीजिये ॥
शरणमें तेरी रहें और समर्पण कर सकें,
निजकी सभीही भावनाएं लगन ऐसी दीजिये ॥
अन्तःकरणमें प्रेम तेरा नित्यही बहता रहे,
वासनाको वह बहा ले जाए ऐसा कीजिये ॥
सामने तेरे झुकें पावें तुझे अपना सुहृद्,
प्राप्त हो सामीप्य तेरा कृपा ऐसी कीजिये ॥
भक्ति-भरे सुन्दर वचन, आराधनामें हम कहें,
जीवन हमारे वचनसम हो यही वर प्रभो ! दीजिये ॥
तुझको भजें हम सदा ही तुझमें हमारा रमण हो,
तुझसे मिले सद्भावमें ऐसा हमें कर दीजिये ॥
अर्पणसहित नित भक्तिपूर्ण यह मिलन हो सर्वदा,
पृथकताका भास भी मनमें न आने दीजिये ॥
हों मिले तुझसे सदा, जैसे कि सागर बून्दको
होता मिलन जगमें, निरंतर योग ऐसी कीजिये ॥
योग्य हों तब योगमें, सायुज्य हमको प्राप्त हों,
तू मैं बने, मैं तू बनूं, दृढ प्रेम ऐसा दीजिये ॥

(४)

मधुमन्मे निक्रमणं मधुमन्मे परायणम्
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसन्दृशः ॥
(अथर्व. १।३४।३)

मेरा समीप आना माधुर्यपूर्ण हो, मेरा दूर हटना माधुर्य-पूर्ण हो, मैं वाणीसे मीठा बोलूं, मैं मधुरूप होऊं ॥

जब किसीके पास आऊं तो भरा माधुर्यसे
हितसे सभीके पास बैठूं हूं भरा माधुर्यसे
मीठा वचन मुखसे सदा उठते हुए नित मैं कहूं,
अलग होना भी मेरा नित हो भरा माधुर्यसे
मैं सदा ही प्रेम पूरण मधुमय होता रहूं,
करता रहूं मंगल सभीका हो भरा माधुर्यसे ।

(५)

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधया अग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥
(यजु. ३२. १४)

दिव्य जन कर्तव्यरत जिससे यहां फूले फले,
अनुभूत-ज्ञान प्रसादसे जो विमल यशभागी हुए ।
नित नए उत्साहसे कर्तव्यमें आगे रहे ।
स्थिर मतिसे हे प्रभो ! अब युक्त मुझको कीजिये ।
मेधा उसीसे पूरण भगवन् ! पूर्ण अब कर दीजिये ॥
जिसमें स्थिर हो धारणा सत् ज्ञानकी सत् कर्मकी ।
पूर्णता हो ध्येय निश्चित साधना हो धर्मकी ।
विस्मृत न हो शुभ भावना, नित कामना हो मर्मकी ।
स्थिर मतिसे हे प्रभो ! अब युक्त मुझको कीजिये ।
मेधा उसीसे पूर्ण भगवन् ! पूर्ण अब कर दीजिये ॥
दीजिये चैतन्यता ऐसी कि रहता पूर्ण मैं ।
कर्तव्यमें नित लगनसे रत हूं सदा सुख पूर्ण मैं ।
सत् असत् की परख कर हूं सत्यतामें पूर्ण मैं ।
स्थिर मतिसे हे प्रभो ! अब युक्त मुझको कीजिए ।
मेधा उसीसे पूर्ण भगवन् ! पूर्ण अब कर दीजिये ।

— लालचन्द्र

धर्म

(ले०-पं० ऋभुदेवशर्मा, 'साहित्याऽऽयुर्वेदभूषण' 'शास्त्राचार्य,' हैदराबाद द०)

संसारमें अनेक धर्माचार्य हुए हैं। उन्होंने यथाश्रुति और यथाबुद्धि जिस धर्मका प्रचार किया, जनता उसे मानने लगी। वह धर्म या उपदेश उन धर्माचार्योंके नामसे प्रसिद्ध हो गया। गौतमबुद्धने जनताके कल्याणार्थ जो प्रवचन किये, वे प्रवचन पुस्तकका रूप धारण कर गये और वह उपदेशही गौतमका धर्म कहलाया। शंकरने उपदेश और पुस्तकोंमें जनताके उपकारार्थ जिस धर्म या ज्ञानका निरूपण किया, वह उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हुआ। रामानुजने जनताके उद्धारार्थ जिस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया, वह सिद्धान्त उन्हींके नामसे प्रसिद्ध हुआ। ऋषि दयानन्दने जिस सिद्धान्त और जिस ग्रन्थको जनताके लिये उपयोगी ठहराया, वह सिद्धान्त उन्हींके नामसे कथित होता है। वर्तमान-युगमें महात्मा गाँधी, वीर सावरकर, जवाहरलाल नेहरू आदि भी किसी न किसी विशिष्ट सिद्धान्तके पोषक हैं, वे आगे उन्हींके नामसे प्रख्यात होंगे।

मनुष्य जिन नियमोंपर चलकर अपना कल्याण कर सकता है, वे नियम या आचारही धर्म कहलाते हैं। धर्म, कर्तव्य, फर्ज या ड्यूटी (Duty) ये एकार्थक शब्द हैं। जब हम धर्म-का निरूपण करते हैं तब हम कर्तव्य-नियमोंकाही निश्चय करते हैं। ब्राह्मणधर्म, क्षत्रियधर्म या राजधर्म, वैश्य-धर्म और शूद्रधर्म तथा ब्रह्मचारीधर्म, गृहस्थधर्म, वनस्थधर्म और संन्यासीधर्म का अर्थ है तत्तद्वर्णाश्रमोंके स्व-स्व-कर्तव्य। मनुष्योंके कर्तव्य कर्मोंका निरूपक शास्त्र 'धर्म-शास्त्र' या 'मानवधर्मशास्त्र' कहलाता है। अतः धर्मका अर्थ है कर्तव्य और मनुष्योन्नतिके सिद्धान्त।

ईसाई धर्मका अर्थ ईसाका उपदेश, बुद्धधर्मका अर्थ बुद्धका उपदेश और जैनधर्मका अर्थ जिनका उपदेश है। वेदधर्मका अर्थ वेद-निर्दिष्ट धर्म। इसी धर्मको वैदिक धर्म कहते हैं। वैदिक-धर्म उतनाही पुराना है जितने पुराने वेद। यदि यह सिद्ध हो जाय कि वेद सबसे पुराने पुस्तक हैं और वर्तमान पुस्तकोंसे उनका कोई न कोई सम्बन्ध है तो वैदिक-धर्म सब धर्मों—उपदेशोंका आदि हो जायेगा। अबतकका अन्वेषण वेदका प्रत्नत्व सिद्ध कर चुका है, अतः सब धर्म-ग्रन्थोंमें वेदकी झलक किसी न किसी रूपमें पाई जाती है, ऐसा मानना असंगत नहीं होगा।

वेदका प्रभाव सब ग्रन्थोंपर मान लें तो वेदकी महत्ता अनिवार्य हो जाती है और धर्मका निर्णय करते हुए हम वेदको पीछे नहीं छोड सकते। अब जब कि संसारमें विद्या-का प्रभाव बढ रहा है, संसारकी आँखें वेदपर पड रही हैं और संसारने उसका महत्त्व बहुत कुछ स्वीकार कर लिया है।

वेदने जिस धर्मका निरूपण किया है वह कई भागोंमें विभक्त है। अध्यात्मधर्म और लोकधर्म दो विषय माने जाते हैं। इन्हींको परमार्थ और व्यवहार कहते हैं। ये दोनों धर्म जीवनमें समान रूपसे रहें तो मनुष्यकी उन्नति होती है। परन्तु जब भौतिक या अध्यात्मवादमेंसे केवल एककी वृद्धि और दूसरेका ह्रास होता है तब संसार दुःखी हो जाता है।

वेद आत्मिक, सामाजिक, बौद्धिक, नैतिक सब प्रकारकी उन्नतिका उपदेश करता है। वेदका धर्म संसारको छोड देनेका नहीं है। परन्तु इसका आशय यह कदापि नहीं कि वह आत्माको बलवान् बनानेका विरोधी है।

वर्तमान कालमें धर्मका निर्णय ईश्वरीय पुस्तकसे माना जाता है। ईश्वरके पुस्तकमें जो कर्तव्यरूपेण विहित है वह धर्म है। ईसाई, मुसलमान, पारसी, यहूदी, पौराणिक सबके पास धर्म-पुस्तक हैं और वे पुस्तक ईश्वरीय माने जाते हैं। वैदिक लोग वेदको ईश्वरीय मानते हैं। ईश्वर एक है तथापि ईश्वरीय पुस्तक अनेक देखे जाते हैं। प्रश्नकर्ता पूछता है कि परमेश्वरकृत पुस्तक कौनसा है वेद, कुरान या बाइबल? यदि मैं कहूं कि परमेश्वरकी कोई सत्ता नहीं और न कोई उसका उपदिष्ट ज्ञान है, तो कुछ लोग इससे

प्रसन्न हो जायेंगे। परन्तु मैं साहसके साथ ऐसा नहीं कह सकता। जब परमेश्वरकी सत्ताके भी प्रमाण मिलते हैं जैसा कि नहीं के, तो मैं सर्वज्ञकी भाँति उस परमेश्वरका निषेध किस प्रकार करूं ? परमेश्वरकी सत्ता स्वीकार कर लेनेपर मुझे उससे प्राप्त ज्ञानका भी अन्वेषण करना पडता है। यद्यपि आज अपनी अपनी सन्ततिके सभी बाप हैं तथापि वही आदि बाप नहीं हैं। इनसे पूर्व भी बाप हो चुके हैं और आदि बाप निस्सन्देह बिना बापके परमेश्वरकी रचना-ही बने। आजकल अनेक नये ग्रन्थ बन रहे हैं, इनके निर्माता पूर्व बाप नहीं हैं। इनसे पूर्व भी इस साहित्यके कई बाप हो चुके हैं और आदि बाप निस्सन्देह परमेश्वरही है। अब वेदही उस बापकी सन्तति माने जा सकते हैं, अन्य ग्रन्थ नहीं। अबतक मेरी ऐसीही धारणा है। जबतक इस धारणाके परिवर्तन करनेवाले कारण नहीं मिलते, तबतक इसे स्थिरही समझिये।

मनुष्यका मस्तिष्क सीमित है। इसके दो कारण हैं (१) स्वभाव और (२) अविद्या। हमारा ज्ञान विद्यादि साधनोंसे जितना बढ सकता है हम उतनाही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। ससीम मस्तिष्कमें असीम बढनेकी शक्ति नहीं है। अतः हम बहुत कम जानते हैं। विद्वान् विद्याद्वारा जितना जानता है, अविद्वान् उससे भी कम जानता है। अविद्याके बढ जाने-पर कुछ चतुर लोग ईश्वर बन बैठे और उनके अविद्वान् शिष्योंने उनके उपदेशोंको ईश्वरीय वाक्य बना दिया। तद-नंतर कुछ विद्वानोंका भी दृष्टिकोण बदल गया और वे भी उन धूर्त और चालाक लोगोंमें जा मिले।

इस प्रकार आज ईश्वरीय पुस्तकोंकी संख्या बढ गई है और यह जानना कठिनसा हो रहा है कि वास्तवमें ईश्वरीय ज्ञान कौनसा है ? परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि ईश्वरीय ज्ञान कोई हैही नहीं। विज्ञान बहुत आगे बढ रहा है और इसकी प्रगतिमें बाधा न पडी तो वह सूक्ष्म तत्त्वोंका अत्यधिक विश्लेषण कर सकेगा और एक दिन ऐसा आयेगा कि हम सब ईश्वरको प्रत्यक्ष जान सकेंगे। यद्यपि वह इंद्रि-योंका विषय नहीं होगा, तथापि उसके स्वाभाविक लक्षण इतने स्पष्ट होंगे कि ईश्वरकी सत्तापर किसीको सन्देह नहीं रहेगा। ईश्वरके बोधसे उसके प्रकाशित ज्ञान और धर्मका भी कण्टक दूर हो जायेगा। पौराणिक लोगोंका अनेक-देवता-वाद, ईसाई और मुसल्मानोंका एकेश्वर-वाद ये सब रहस्यके विषय नहीं रह जायेंगे। धर्मके निश्चित रूपको ग्रहण करनेसे मानव अवश्य कृतकृत्य होगा। बुद्धिमान् लोग अब भी धर्मके विरोधी नहीं हैं; इन्द्रियजन्य या आत्मसंयम-रूप धर्म सबको स्वीकार है। हाँ, राष्ट्रीय क्रान्तिने लोगोंको अध्यात्मधर्मकी ओर देखनेका बहुत कम अवसर दिया है।

गणेशजी और आर्यधर्म

(लेखक— श्री विश्वनाथ धवन, बी. ए. (हिंदी आनर्स), सेवक आश्रम, देहरादून)

हिन्दुस्तानके अध्यात्मवादियोंने प्रतीकवादकी पद्धतिका प्रश्रय किया है। इसका कारण यह है कि हमारा वैदिक धर्म कुछ गिने चुने व्यक्तियोंके दार्शनिक विवेचन और गम्भीर मननकीही वस्तु नहीं था, बल्के वह तो जनताका भी प्राण था। किंतु आध्यात्मिक प्रतीकोंकी यह कल्पना एवं अलंकारिक उद्भावना कुछ ऐसी सुन्दर, सजीव और साभिप्राय बन पड़ी है कि हम उसकी मुग्ध कंठसे प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। हमारे यह दार्शनिक विचारक केवल अपने आत्मिक अभ्युत्थानतक ही सीमित न रहे, वरन् इनका सरल भावुकतामय हृदय जन-साधारणकी भावनाको भी समझनेमें समर्थ हुआ। इन अलंकारिक उद्भावनाओंकी संख्या बहुत है। इससे एक निबन्धकी संकुचित परिधिमें उनपर उचित प्रकाश डालना सम्भव प्रतीत नहीं होता। प्रस्तुत निबन्धमें मैं केवल गणेशजी तथा उनके वाहन मूषक तक अपनेको सीमित रखूँगा।

हिन्दू धर्ममें गणेशजी विश्वासके प्रतीक हैं, तथा मूषक (चूहा) तर्कका प्रतीक है। मूषक गणेशजीका वाहन है। इसका सांकेतिक अर्थ (Symbolical meaning) यह हुआ कि वैदिक धर्मने तर्कके ऊपर विश्वासकी प्रतिष्ठा की है। तर्क मस्तिष्कसम्बन्धी शक्ति है— उसका काम है काटना, छांटना, नीरक्षीरका विवेक करना। विश्वास हृदयसम्बन्धी वस्तु है। विश्वासमें स्थिति है, तर्कमें गति है। तर्क दार्शनिक दुनियामें हमारे सफरके समान है— इसी तर्ककी सहायतासे हम उचित पथका अनुसन्धान और अवलम्बन लेते हैं।

विश्वास हमारी इस आध्यात्मिक यात्राकी आखरी मंजिल है— अन्तिम गन्तव्य स्थान है। यह सम्भव नहीं कि कोई चलताही रहे, ठहरे नहीं। यदि कोई ऐसा हठ करे कि और चले चलताही रहे, तो वह थककर गिर जायेगा— उसे झक मारकर बैठना होगा। और क्यूँकि यह बैठना विवशतामें होगा, इसलिये यह कोई निश्चित नहीं कि वह जगह ठीकही हो। ऐसी अवस्थामें इस बातकी प्रत्येक सम्भावना रहेगी कि यह विवशता कहीं आध्यात्मिक यात्रीको पथभ्रष्ट और ध्येयच्युत न कर दे। तर्कका उद्देश्य यदि तर्कही हो तो इसका अवश्यम्भावी परिणाम यह होगा कि वह ऐसे मनुष्यको जिसने एक मात्र तर्क-प्रणालीका प्रश्रय किया है— विनाशके पथ ला खड़ा करे और एक अवांछनीय स्थानपर ला पटके। गीतामें भी भगवान् कृष्णने कहा है—

...... संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥
(भ. गी. अध्याय ४ श्लोक ४०)

तर्कका सहारा केवल तथ्यके निर्णयके लिये करना चाहिये। निरुद्देश्य तर्क एक खतरनाक चीज है। तर्क एक कैंचीके समान है। एक होशियार दर्जी निशान लगाकर कपड़ोंको होशियारीसे काटता, छांटता है फिर सुईकी सहायतासे परिधान योग्य सुन्दर वस्त्रको बना लेता है। इसी प्रकार विवेकशील दार्शनिक तर्करूपी कैंचीकी सहायतासे विचारोंका परिष्कार करता है, एवं फिर विश्वासरूपी सुईसे अपने विचारोंको सुस्थिर, तथा परिमार्जित रूप प्रदान करनेमें सफल होता है। इसीलिये हमारे धर्मने तर्कको केवल विद्वानोंतक सीमित रखा है। कारण यह है कि मरहमपट्टी तो साधारण कम्पाउन्डर भी कर सकता है, परन्तु आपरेशनका अधिकार तो एक सुयोग्य सर्जनकोही हो सकता है। हमारे धर्मने विश्वासका अधिकार जन-साधारणको दिया किन्तु तर्कका अधिकार सबको नहीं— इस प्रकार अत्यन्त ही परिष्कृतताके साथ तर्कके ऊपर विश्वासकी प्रतिष्ठा की गई। इन सब अलंकारिक उद्भावनाओंके अभिप्रायका अन्वेषण करनेपर एक चीज और प्रकाशमें आती है और वह यह है कि वैदिक धर्म अन्यान्य मजहबोंकी भांति विश्वासमूलक नहीं वरन् ज्ञान मूलक है। हमारे यहां धर्ममें पहले विश्वास-की बात नहीं कही गई, वरन् अन्तमें है। विश्वास भावनाके परिचायक, गणेशजी के वाहन मूषक होनेमें यही बात है

जिसे इस भावचित्रद्वारा समझानेका प्रयत्न किया गया है।

यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥
(मनुस्मृति)

इस प्रकार आर्य-धर्ममें तर्ककी महत्ता स्पष्ट रूपसे स्वीकार की गई है, परन्तु साथ ही उसे उचित स्थान दिया गया है। तर्क हमारी आध्यात्मिक यात्रामें साधन है, साध्य नहीं, अवलम्ब है, उद्देश्य नहीं, प्रयत्न है, परिणाम नहीं। तर्क हिलानेकी चीज है— तोड़फोड़की वस्तु है— यह चूहेके समान है जो मूल्यवान्से मूल्यवान् वस्तुको काट डालता है। इस क्षुद्र जन्तु मूषकपर जब स्थूलकाय गणेशजी बैठ गये, तो यह विनष्टकारी जन्तु चूँ भी न कर सकेगा!

कैसा उत्कृष्ट भावचित्र है, जिसके प्रत्येक पहलूमें मार्मिक विचार भरे पड़े हैं। इसकी अलंकारिकता एवं उद्भावना मनको मुग्ध करनेवाली है। कल्पना कुछ ऐसी सुन्दर है कि निश्चयही हम कह सकते हैं कि यह आर्य कल्पना है।

\+ + +

गणेशजीका ऐतिहासिक स्वरूप भी है। गणेश गणितज्ञों, ज्योतिषियों और खगोल-विद्याके पारंगत विद्वानोंका सर्वोपरि पद था। इसीसे विद्याके अधिष्ठाताके रूपमें यह देवता माना जाता है। जिन महद्व्यक्तियोंको यह पद प्राप्त होता था, वे असाधारण योगशक्तियोंसे भी युक्त होते थे। पृथ्वीमें गुरुत्वाकर्षण है। वैज्ञानिकोंकी रायमें, यदि मंगल ग्रहमें मध्यमाकर्षण है तो वहाँ रहनेवाले जीवधारी उड़ते भी होंगे। इससे यह प्रतीत होता है कि ईसाई तथा मुसलमानोंने जो फरिश्तोंकी कल्पना की है वह निराधार नहीं। फरिश्तोंकी कल्पनाके साथ ही यह उद्भावना भी की गई कि इनके पंख होते होंगे। जिन ग्रहोंमें मध्यमाकर्षण होनेसे वहाँके जीवधारी आकाशमें विचरण करते होंगे, उनके पंख होते होंगे या नहीं यह कोई कह नहीं सकता। किन्तु चित्रों आदिमें उनके पंखोंका दिखलाना केवल उनकी उड़नेकी शक्तिका निर्देश करता है, न कि किसी निश्चित वस्तुस्थितिका द्योतन।

गणेशजीका वाहन मूषक जैसा छोटा प्राणी है। जिसे गणेशका उच्च पद प्राप्त होता होगा, वह यही नहीं कि खगोल-वेत्ता तथा योगशक्तियोंसे सम्पन्न होगा, वरन् निश्चय-ही उसकी शारीरिक सम्पदा भी आदर्श होती होगी। इसी चीजका दिग्दर्शन उन चित्रोंसे होता है जिनमें गणेशजीको सदा स्थूलकाय चित्रित किया जाता है। क्यूँकि यह एक-भावचित्र है, इसलिये यह भाव निकालना अच्छा होगा कि यह गणेशकी स्थूलता चूहेके मुकाबलेमें है।— इसका यह तात्पर्य नहीं कि गणेशजी मखमलकी गद्दियोंमें आराम करनेवाले उन लालाओंकी तरह होंगे जिनके पेट गुब्बारेकी तरह बेतहाशा फूले होते हैं! इस भावचित्रमें यह दिखलाया गया है कि अपेक्षाकृत रूपमें एक ओर शारीरिक सम्पदाका आदर्श तथा दूसरी ओर एक क्षुद्र चूहा!

योगशक्तिसे, प्राणोंको खींचनेसे योगीका आसन ऊंचा उठ जाता है। इसी तरह गणेशजी योगशक्तिके कारण चूहे जैसे छोटे जीवपर भी अपना शरीर साध सकते हैं— सम्भवतः उसी भाँति जैसे तैराक अपना शरीर गहरे जलमें साध लेता है और डूबता नहीं। गणेश यौगिक आकर्षणसे चूहेपर भी सवारी कर सकते हैं— इसका यह अर्थ नहीं कि वे सदा चूहेपर फुदका फिरते हैं। पुराणोंमें भी गणेशजीके जो चित्र प्रस्तुत किये गये हैं उनमें मूषक गणेशजीके पास बैठे हैं। गणेशजी सचमुच उनपर सवार नहीं। कारण यह कि ऐसा भावचित्र फरिश्तोंके पंखोंकी तरह किसी भाव-विशेषका निर्देश करता है, वस्तुस्थितिका दिग्दर्शन नहीं— यह अलंकारिक वर्णन है, एक कमनीय कल्पनाका सुन्दर साकार स्वरूप है।

\+ + +

संयुक्त प्रांतके प्रसिद्ध हिन्दी लेखक एवं सुयोग्य विद्वान् श्री सम्पूर्णानंदजीने गणेशजीपर एक विचारपूर्ण पुस्तक लिखी है, जो अभी हालहीमें प्रकाशित हुई है। इस पुस्तकमें विद्वान् लेखक इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि गणेशजी अनार्य देवता है।— हम यह मानते हैं कि गणेशजी वैदिक देवता नहीं, पौराणिक है, पर पुराणोंका आधार वेद होनेसे वे अनार्य नहीं हो सकते। फिर गणेशजीकी कल्पना जैसी कमनीय और सुन्दर है, उसके विषयमें हम कह सकते हैं कि अनार्य कल्पना इतनी उच्च और इतनी उत्कृष्ट नहीं हो सकती। अनार्य देवता भयप्रद हैं, आर्योंके देवता भव्य रूपमें चित्रित किये गये हैं, वे आनन्द और कल्याणकी आभा-

समाजपर वर्षा करते हैं। गणेशजी निश्चय ही अनार्य देवता नहीं क्योंकि उनको देखकर किसीके मन मानसमें भयका संचार नहीं होता। उत्तरी भारतके प्रसिद्ध सन्त और हिन्दीके सर्व-मान्य कवि गोस्वामी तुलसीदास उनकी वन्दना इस रूपमें करते हैं—

गाइये गनपति जगवन्दन।
संकर सुवन भवानीनन्दन ॥ १ ॥
सिद्धिसदन गजबदन विनायक।
कृपासिन्धु सुन्दर सब लायक ॥ २ ॥
मोदकप्रिय मुद मंगलदाता।
विद्या-वारिधि, बुद्धिप्रदाता ॥ ३ ॥
(विनय-पत्रिका)

इसमें अन्तिम पद "मोदकप्रिय मुद मंगलदाता..." विशेष रूपसे ध्यान देने योग्य है। गणेशजीको 'विघ्नेश्वर' कहा गया है। गणेशजी चूँकि विघ्नोंके स्वामी हैं इसलिये उन्हींसे प्रार्थना की जा सकती है कि विघ्नोंका नाश करें। पर प्रश्न उठता है कि विघ्नोंकी हकीकत क्या है? संसारमें पद पदपर विघ्न हैं, जीवनकी प्रत्येक क्रियामें आपदायें हैं। यह विघ्न और आपदायें जो हमारी गतिशीलतामें अवरोध उपस्थित करती हैं— केवल आत्मबल और आत्मविश्वाससे हट सकती हैं। इसी आत्मविश्वासके बलपर हम विरोधी परिस्थितियों, कठिन अवस्थाओं और विषम अवरोधोंपर विजय प्राप्त कर सकते हैं। संसारकी महान् शक्तियाँ आत्म-विश्वासके बलपर विघ्नों बाधाओंकी उत्ताल तरंगोंसे उद्वेलित और उद्विग्न नहीं हो उठतीं, वरन् जिब्राल्टरकी चट्टानकी तरह सुस्थिर रहती हैं। यही आत्मबल और आत्मविश्वास— जो आपदाओंके तूफानों, विपत्तियोंकी विद्युत् और विघ्नोंकी विषमताओंके बाद भी अटल और अजेय रहता है— गणेशजीका स्वरूप है। गणेशजी इसी आत्मिक बल और आत्मविश्वासके प्रतीक हैं।

× × ×

किन्तु हमें किसीभी अवस्थामें उन प्रक्षिप्त और कल्पित कहा-नियोंका प्रश्रय लेना ठीक न होगा, जो इन साभिप्राय सुन्दर भावचित्रोंके बाद पुराणोंके कलेवरमें समावेशित कर दी गई हैं। केवल इन कपोल-कल्पित कथाओंके भरोसेपर कोई निर्णय देना तो प्रतारणा और प्रवञ्चनाही होगी। हमें तो सहृदयतामय समझदारीसे इन दार्शनिक कल्पनाओं तथा सुन्दर भावचित्रोंके अन्तरंग अर्थों एवं मौलिक स्वरूपोंतक पहुँचना चाहिये।

× × ×

हम किधर जा रहे हैं ?

(लेखक— श्री. वा० पु० हर्डीकर, राजापुर)

कितना फिजूल है यह सवाल ? हरएक बातमें अपने पूर्वजोंसे हम आगे बढे हैं। हमारा जीवन अब कितना सौख्यपूर्ण तथा उन्नत हुआ है ! विद्या और कलाओंका चारों ओर प्रसार हो रहा है। पिछले जमानेकी तरह उनसे अब किसीको वंचित नहीं रहने पडता। दो चार आनेमें सिनेमा और नाटक देखकर गरीबसे गरीब मनुष्य भी संगीतका आनन्द और रस पा सकता है। जहाज और रेल-मोटरों-विमानोंकी सुविधासे— चाहे सो समय हो-शीघ्रतासे और बडे मजेसे हम दूरदूरकी यात्रा कर सकते हैं। बिजलीकी रोशनीसे हमारे बडे बडे शहर रातमें भी चमक उठते हैं, मानो दिवालीका अनुपम दृश्य दिखाते हैं ! रेडिओने तो कमाल कर दिया है ! देहली–ग्वालियरका गाना, पॅरिसका डान्स, लंदनका लेक्चर, सब कुछ हम घर बैठे सुनते हैं ! इस प्रकार इस बीसवी सदीमें मानो ' इन्द्रभुवन ' का मजा हम यहीं लूटते हैं ! वाह ! वाह !

× × × ×

हाय ! इंद्रभुवनका यह मजा हमें कितना महँगा पड रहा है ? यह ऐश-आराम पानेके लिये हरसाल करोडों रुपये विदेशमें जानेसे हमारा देश कंगाल हो गया है ! आवश्यकता न होते हुए भी हम कितनीही चीजें शौकके लिये खरीदते हैं; इससे हमारे खर्चकी तंगी कभी नहीं मिट सकती ! परिणाम इस हदतक पहुंचा है कि, हम पूरे पूरे ' टके ' के दास बन गये हैं ! रुपयेके सामने हम और कुछ भी नहीं जानते ! भोगविलासकी लालचमें अपनी विवेक–बुद्धिको— अपनी आत्माको— हम खो बैठे हैं ! हाय !! ' इंद्रभुवन ' की ओर मानो ऊपर ताकते हैं, लेकिन नीचे पैर फिसलकर घोर अधःपतनकी दरीमें हम गिर जाते हैं !!

\+ \+ \+ \+

' खाना-पीना-सोना और मजा लूटना ' बस; इतनाही हमारा उद्देश्य, इसीमें हमारे जीवनकी सफलता ! कोई भी काम हो, उसमें धनलोभकी मात्रा ज्यादह रहती है, कर्तव्यकी भावना बहुतही कम ! स्कूलों-कॉलेजोंमें जाकर हम बीसों किताबें क्यों रटते हैं ? विदेश जाकर बैरिस्टर-प्रोफेसर क्यों बनते हैं ? खूब पैसा कमाकर ठाटबाटसे जिंदगी बितानेके लिए; न कि ज्ञानके लिए या अपनी जातिकी सेवा करनेके लिए ! सरकारी नौकरको कितनाही वेतन मिले, उसमें वह कभी संतुष्ट न होगा। धीरे धीरे उसे रिश्वत लेनेकी आदत पड जाती है। सूदके नामपर साहुकार और फीसके रूपमें वकील और डॉक्टर जैसे शिष्ट लोग भी गरीबोंका रक्त रातदिन बराबर चूसते रहते हैं ! इस बातमें गरीब किसान या मजदूर भी पीछे नहीं रहता। महाजनोंका अनुकरण यह तो गरीबोंका,— अज्ञ लोगोंका शास्त्रमान्य कर्तव्यही है ! जंगलकी लकडियाँ बाजारमें बेचनेवाला गरीब गँवार भी लकडीकी मोलीमें ऊपरसे दो चार अच्छी लकडियाँ रखकर नीचे कुछ भी भरकर लोगोंको ठगाता है। इस प्रकार अमीरसे गरीबतक हम लोग अपने पडोसियोंको लूटनेमें मशगूल रहते हैं। तो फिर किस मुँहसे कहेंगे कि ' हम सुधरे गये हैं ? '

❀ ❀ ❀ ❀

स्कूलोंसे और समाचार-पत्रपत्रिकाओंसे जो ज्ञान हमें आज मिलता है, उससे हमारे ' दिमाग ' का विकास जरूर होता है; लेकिन इसीके बोझसे ' हृदय ' कुचल जाता है ! विवेक, दया तथा उदारता आदि भावनाएँ हृदयका विषय है, कोरी कल्पनाका नहीं। उन दिव्य भावनाओंका अब कहीं पता भी नहीं मिलता ! हाँ; मैं भूल गया। इन भावनाओंके सिवा हृदयकी और भी एक भावना है, वह है ' प्रेम ' ! हमारे काव्यका आधार ! सिनेमा-सृष्टिका सर्वस्व !! लेकिन खेद है कि इस ' प्रेम ' की बाढमें हमारी पवित्र विवाह-संस्थाकी नींव अब ढलने लगी है ! क्योंकि यह ' प्रेम ' तो ' अंधा ' ठहराही है। न जाने यह ' अंधा ' कहाँ ठोकर खाएगा और कहाँ गिर पडेगा ! ' प्रेमके गुंजन ' में हम ' अमर-सपना ' जीवन बिताना चाहते हैं। किसी ' प्रेमी युगुल ' में कहीं

जरासा मनमुटाव हो, कि तुरंत एक दूसरेसे छुटकारा पाकर दूसरा साथी ढूँढने लगता है ! हमारे उपन्यासोंका-कथा-कहानियोंका यह आदर्शसा होता चला है ! इससे विवाहकी पवित्रता और गृहस्थीका कर्तव्यपूर्ण जीवन नष्ट भ्रष्ट होनेका भय दिखाई देता है ! तो अब मनुष्य और पशु दोनोंमें सींग और पूँछके सिवा कौनसा फर्क रहा है ?

*　*　*　*

खेतमें किसानके इशारेसे बैल काम करते हैं। कुम्हारके गधे भी दिनभर मिट्टीके बोरे ढोते हैं। क्यों ? लोगोंके उपकारके लिए ? अथवा अपने मालिकके बाल-बच्चोंको रोटी मिला देनेके लिए ? नहीं; अपनेको घास और दानापानी मिलनेके लिए और इससे भी ज्यादह मालिककी फटकार तथा कोडेके भयसे ! हम लोगोंकी भी यही हालत हो गई है। वेतनके लिये तथा रिश्वतकी आशासेही हम काम कर सकते हैं। कर्तव्यकी भावनासे बहुत कम ! अपने अन्य निजी कामोंमें हम उतनी सावधानी नहीं रखते कि जितनी सरकारी अफसर सिरपर होते समय ऑफिसके कामोंमें रखते हैं।

हम चोरी क्यों नहीं करते ? नीति और धर्मकी दृष्टिसे चोरीको बुरी बात समझकर ? नहीं; इसीलिये कि वह कानूनी दृष्टिसे गुनाह होगा और इससे कोई सजा हो सकेगी। किसी मेलेमें देखिए। बडी भीडमें अव्यवस्थाके कारण बूढे-अपंगोंको 'देवदर्शन' ठीक नहीं होता ! छोटे छोटे बच्चे तो कुचल जानेकी भी बारी आती है ! थोडीसी बातपर लोग झगडने लगते हैं, जरा भी भलमनसी नहीं दिखाते। लेकिन ईश्वरकी कृपासे वहाँपर पुलीसका शुभागमन हो कि सब चूपचाप !! क्योंकि उसके हाथमें कानूनी डंडा रहता है !

कहते हैं कि पशुयोनिसे उत्क्रान्त अर्थात् उन्नत होकर मानव पैदा हुआ है। लेकिन अनुभव तो अब उलटाही आता है कि विज्ञानकी मोह-जालमें फँसकर मनुष्य 'मानवता' से पतित होकर पशुताकी ओर चल रहा है। हाय ! नई रोशनीसे हम भारतीय भी चौंधिये गये हैं। संसारके बडे बडे राष्ट्रोंके नेता तो अपनी 'राष्ट्रियता' के नामपर अन्य लोगोंपर अत्याचार करते नजर आते हैं ! दया, बंधुता, समताका कहीं भी पता नहीं मिलता ! दीनबंधु भगवान् हमें सुबुद्धि दे !!

बाइबल तथा कुर्आनमें वैदिक सूर्योपासना

(लेखक- श्री. गणपतराव बा० गोरे, ११५८ मंगलवार पेठ, कोल्हापूर ।)

(खंड ९)

[आक्तूबर १९४५ अंक से आगे]

[कुर्आन तथा बाइबलके इजराईल अजाजील, जोएल, रोमेल, एलिजः, एल्कानः नाम वैदिक हैं। कुर्आनकी ६ सूरतों २, ३, २९, ३०, ३१, ३२ के आरंभमे आए 'अलम्' शब्दकी खोज। मुसलमान तथा ईसाई भाष्यकरोंके मत। आर्य-समाजी विद्वानोंके मत। लेखककी खोज अलम् को एक पूरा शब्द मानते हुए (१) कन्कार्डन्ससे, (२) संस्कृत-आंग्ल कोशोंसे। अलम् तथा बकरःका परस्पर-संबंध तथा इनके अर्थ। उपरोक्त छे सूरतोंमें अलम् शब्दका, सूरतके नाम, तथा अलम् शब्दके पश्चात् आनेवाली आयतोंसे आर्थिक संबंध]

आक्तूबर १९४५ अंकमें धारा १७ तथा १८ की पोट-धारा १६ तक जिब्रील, मीकाईल, इस्राईल तथा इस्माईल इन चार कुर्आनके नामोंको हमने मूलतः संस्कृतसे निकले हुये सिद्ध किया था। वही-विषय आगे चलता है।

१७. कुर्आनका **इजराइल**, बाइबलका Azriel वा AZARAEEL [अजराईल] वेदका यम वा मृत्यु देव वा काल है। कन्कार्डन्समें अजराईलका अर्थ God is help-er [परमात्मा सहायक है,] ऐसा लिखा है। यह शब्द संस्कृतके **अजरः+ ईल से बना है, जिसका अर्थ होगा अविनाशी देव**। जो स्वयं मृत्युरहित रहकर जीवोंको उनके कर्मफल आवागमन द्वारा भुगतानेमें सहायता करता रहता है, और जिसमें मुक्तात्माएं मुक्तिका आनंदभी भोगती हैं, वह सूर्य ही है! यही **अजराईल** बाइबलका है।

१८. कुर्आनमें शैतान का एक नाम **अजाजील** भी है। बाइबलमें यह AZIEL=God of might बना है। वेदमें 'अजा' नाम 'प्रकृति' वा माया का है, अतः यह अजा-जील भी संस्कृतका आजाईल शब्द है! 'न जायते इत्यजा' वैदिक साहित्यमें प्रकृतिको अनादि ही माना गया है। जिस प्रकार मुसलमान शैतान द्वारा बहकाये जाते हैं, उसी प्रकार हिन्दुओंकोभी माया भ्रमाया करती है।

१९. बाइबलके JOEL का कन्कार्डन्सकृत अर्थ है JAH is God = जः परमात्मा है। जः वा ज के अर्थ हैं जनक, पिता ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि। अतः JOEL= जदेव = सूर्य!

२०. इसी प्रकार Rommel भी रामदेव होगा।

२१-२२. यहांतकके नामोंमें 'ईल' 'एल' पद अंतमें आया है, परंतु कितेक नामोंमें पहिले भी आता है यथा ELIJAH = My God is JAH or God him-self वही उपरोक्त अर्थ। ELKANAH=God is possessing = परमात्मा स्वामी है। हम इसे कान = कृष्णदेव कहेंगे। इनका अधिक विस्तार करना व्यर्थ है।

(१९) कुर्आनके 'अलम्' शब्दके अर्थकी खोज।

प्रश्न- कुर्आनकी छे सूरतों सं० २, ३, २९, ३०, ३१, ३२ के प्रारंभमें 'अलम्' शब्द आया है, जो अरबीमें अलिफ, लाम्, मीम् कहलाया है, और जिसके अर्थ करनेमें स्वयं मुस्लिम विद्वानोंमें बड़ा मत-भेद दर्शाया है! क्या आप आजतकके किए हुए इस शब्दके अर्थोंको दिखाते हुए, इसको भी वैदिक शब्द सिद्ध कर सकेंगे?

उत्तर १- मुसलमान तथा ईसाई भाष्यकरोंके मत।

१. कुर्आन। २।१ पर मराठी भाष्यकार- ... इन [अलिफ, लाम, मीम] को अरबीमें **हुरूफे- मुकत्तेआत**

अर्थात् 'टूटे हुए अक्षर' [Abbreviations] कहते हैं। इनका गूढार्थ समझनेका प्रयत्न विद्वानोंने किया है और अपने अनुमानिक और समर्पक मत दिखाए हैं। उदारणार्थ- अलिफ अल्लाहके लिए, लाम जिब्रील या पवित्रात्माके लिए, तथा मीम मोहमदके लिए। अर्थात् अल्लाहने जिब्रिल देवदूत द्वारा ह० मोहंमद पैगंबर पर कुर्आन प्रकट किया [जिब्रीलके लिए तो 'ज' होना चाहिए! 'ल' कैसे ?]

१. इब्ने अब्बासका मत- अलिफ् [अ] का अर्थ है कि अल्लाह, अहद, अवल, आखिर, अजली [अनादि], अबदी [अनन्त] है, लाम् [ल] का अर्थ है कि वह लतीफ= सूक्ष्म है। मीम् [म] का अर्थ है मालिक, मजीद= प्रौढ, मनान= अत्यंत भला करनेवाला।

[जिस प्रकार 'ओम्' अ, उ, म् से बना, कुछ उसी प्रकार उक्त मतमें भी अ, ल, म को अल्लाहके किलेक गुणोंका वाचक समझा गया है।]

२. कई विद्वानोंका मत है कि अलिफ= अल्लाह, लाम धनी इस्राईल [यहूदी], तथा मीम= मूसा। कारण वह कि सूरत बकरमें इन तीनोंका वर्णन आया है।

४. गोलिअस साहेबका मत- अलिफ्, लाम्, मीम् अरबी वाक्य 'अम्र लि मुहम्मद' के प्रथम अक्षर है, जिनका अर्थ है At the command of Muhammad= मुहम्मदकी आज्ञा से। [मौ० मु० अली फुट नोट ११ में इसे व्याकरणानुसार अशुद्ध समझते हैं]

५. सूफिया लोग 'अलम्' को अल्लाहका नाम समझते हैं। ये लोग अलिफ्, लाम्, मीम को 'अना अल्लाह आलम= मैं अल्लाह ज्ञाता हूं' के संक्षेप समझते हैं [धारा २, ३, ५, पं० लक्ष्मण कृत वेद और कुर्आनसे]

६. रॉडवैल (Rodwell) साहेबका मत- कुर्आन- अ० ३८ के नून (NUN) अक्षरपर टीका करते हुए लिखते हैं- The meaning of this and of the similar symbols, throughout the Quran, was unknown to the Muhammadans themselves even in first century. [मु० अलीकृत कुर्आनकी टीप ११] अर्थात् नून, अलिफ, लाम, मीम आदि अक्षरोंके अर्थ तो हिजरी सनकी प्रथम शताब्दिमेंभी स्वयं मुसलमानोंको मालूम न थे। ['अलम' अरबी शब्द ही नहीं फिर वे समझते क्योंकर ? परंतु मौ० मु० अली इस अति स्पष्ट बातकोभी नहीं मानते !]

७. आंग्ल भाष्यकार मौ० मुहम्मद अलीका मत- अलिफ, लाम, मीम ये तीनों 'अना अल्लाह आलम' इस अरबी वाक्यको संक्षेपसे दिखानेवाले अक्षर हैं। अलिफ = अना [मैं], लाम= अल्लाह, मीम= आलम् [सर्वज्ञ] अर्थात् I am Allah the Best knower, अर्थात् 'अलम' के अर्थ हुए "मैं अल्लाह सर्वोत्तम ज्ञाता हूं"। [टीप ११ के अनुसार वह अर्थ अबु हय्यन इमाम असीरुद्दीन तथा इब्ने जरीर तबरीके मतानुसार लिखा गया है। वही धारा ५ का अर्थ है। खैंचातानी स्पष्ट ही है !]

८. ख्वाजा हसन निजामी देहलवीका मत- अलिफ लाम, मीम = मैं अल्लाह बडा ज्ञानवान् हूं। टीका- अलिफ लाम् मीम् ख्याली (मनुष्योंके सोचे हुए) अर्थोंमेंसे- जो पिछले पूर्वजोंने किए हैं, वह एक है। नहीं तो वास्तवमें अलिफ् लाम् मीम्— अल्लाह और उसके रसूल के बीच रहस्य (राज) था।

[ख्वाजाजीने अर्थोंमें मौ० मु० अली आदिका और टीकामें रॉडवैल साहेबका समर्थन किया है !]

९, १०, ११. उक्त आठ उदाहरणोंसे विदित होगा कि 'अलम्' शब्द का सत्य अर्थ गत १३६५ वर्षोंमें किसीको नहीं सूझा है, और इसी कारण सबोंने मनमाने तथा परस्पर विभिन्न अर्थ भी किए हैं। कुर्आनके कई अनुवाद तो ऐसे हैं जिनमें 'अलम्' शब्दका अर्थ न करते हुए उसे 'अलम्' ही लिखा है, यथा—

९. सिन्धी भाषाका अब्दुल हसनकृत अनुवाद।

१०. उर्दूका मौ० रफीउद्दीन कृत अनुवाद।

११. उर्दूका हाफिज नजीर महंमद कृत अनुवाद।

व्यर्थकी खैंचातानियां करनेसे यही भला है कि ऐसे शब्दोंका अर्थही न किया जाय। ऐसा करनेसे एक तो किसीको दिशाभूल न होगी और दूसरा सत्यार्थको खोजनेवालोंको प्रोत्साहन मिलेगा।

उत्तर २, आर्यसमाजी विद्वानोंके मत।

१२. पं. राजारामजीका मत— कुर्आनके आदिमें जो अलिफ (अ), लाम (ल), और मीम (म) है, जिनका

आजतक किसी मौलवीपर भेद नहीं खुला, जिनके अर्थमें सब मौलवी असमर्थ हैं, वे ये ही ओम्‌की तीन मात्राएं हैं। क्योंकि अरबीमें 'ल' 'उ' के स्थानमें प्रयुक्त होता है, जैसे मही उद्दीन [अरबीमें 'मही अल्दीन' लिखा जाकर 'महीउद्दीन' उच्चारा जाता है– लेखक] इसी प्रकार अ, ल, म् ये अ, उ, म् बन जाते हैं। ×

[हम इससे सहमत नहीं, क्योंकि संस्कृत तथा अरबीमें सभी स्वर अ= अलिफ'ا'से बने हैं, यथा संस्कृतकी इ=अि= अरबीकी 'اِ' तथा संस्कृतका उ=ऊ=अरबीका 'اُ'। अतः अरबीमें 'अल्दीन' लिखकर 'उद्दीन' उच्चार करनेमें अल्‌दीन' का 'अलिफ' सहायक है, 'लाम्' नहीं। निम्न उदाहरणोंसे समझ लो—

अरबीमें लिखाते हैं अल्नूर उच्चारते हैं अन्नूर।
,, ,, ,, रहिमानि अल् ,, ,, रहमान्
रहीम् इर्रहीम्।
,, ,, ,, अल्लाह, अल् ,, ,, अल्लाह
समद् उस्समद्]

११.पं०लक्ष्मणजी आर्योपदेशकका मत-"८४ वेदमें ईश्वरको 'अलम्' कहा है, तो कुर्आनमें इसे 'अलम्' कहा है"। +

अलम्— अलिफ, लाम्, मीम् अक्षरोंसे युक्त इस शब्दको अबतक मुस्लिम विद्वान् किसी विशेष अर्थके साथ संबंधित कर न सके। भाष्यकारोंका कथन है कि ये 'हरूफे मुकत्तिआत्'=कटे अक्षर हैं, जिनके अर्थ खुदाके सिवा किसीको मालूम नहीं। .... 'अलम्' और इसी प्रकारके अन्य शब्दोंके अर्थ स्वयं मुस्लिम विद्वानोंने अबतक नहीं समझे। न किसीने साहस करके आजतक ऐसा आग्रहही किया है कि मुझ पर 'अलम्' शब्दके वास्तविक अर्थ प्रकट हो चुके हैं। इसके विपरीत कयासी व्याख्याएं और अटकलके विवरण शंकाओंको बढाते आते हैं। निःसंदेह खुदा किसी बातको नहीं छुपाया करता, और न कोई शब्द अर्थहीनही हुआ करता है। .... **अलम् शब्द वेदका है**, जिसके अर्थ हैं काफी या **कामिल** यथा—

पिप्पली क्षिप्त भेषजी ...... जीवितवा अलम् ॥

(अ. ६।१०९।१)

अर्थ– पिप्पली उन्मादकी ओषधि है ...... और वह जीवनके लिए पर्याप्त या काफी है ॥ १ ॥ ....

वैदिक धर्मी लोग अबतक 'अलम्' शब्दका उपयोग 'पूर्ण' या 'कामिल' के अर्थोंमें करते हैं, यथा जब कोई पत्र या लेख समाप्त होता है तो नीचे लिखते हैं **अलमिति** अथवा **इत्यलम्**। *

[हम पंडितजीके उक्त मतसे सर्वथा सहमत हैं। यह विचार लेखकको स्वयंस्फूर्तिसे आया था, परंतु फिर ज्ञात हुआ कि श्री पं. लक्ष्मणजीने प्रथमही इसे छाप भी डाला है। अतः उन्हींके नामसे लिखाया गया है– ले०]

१४. लेखककी खोज—हम अपनी खोज दोनों प्रकारसे करेंगे। एक तो **अलम्** को एक शब्द मानकर, और दूसरा इसे मुस्लिम भाष्यकारोंके अनुसार तीन पृथक अक्षर **अलिफ्, लाम्, मीम्** मानकर। प्रथम **अलम्** को एक पूरा शब्द मानकर विचार करेंगे।

(१) यदि अलमको एक पूरा शब्द माना जाय तो—

प्रश्न १– क्या **अलम्** शब्द अरबी भाषामें नहीं है? यदि है तो इसका अर्थ क्या है? कुर्आनमें कहीं उपयोगमें आया है?

उत्तर– **अलम्** अरबी शब्द है, जिसके अर्थ हैं दुःख, दर्द, रंज, मुसीबत=Pain, Torment, Grief, Affliction। बहुवचन है।

आलाम्। कुर्आन २।२५८ में **अलम्** तर इत्यादि शब्दों का प्रयोग है परंतु इसका अर्थ सभी भाष्यकारोंने **क्या तूने**

× देखो पं. राजाराम, प्रोफेसर ऑफ थिऑलाजी, डी. ए. वी. कालेज लाहोरकृत 'ओंकार उपासना' पृ. ३२

+ वेद और कुर्आन [उर्दू] जिल्द १, भाग १ पृ. १२०

* ,, ,, ,, ,, ,, ,, भाग २ पृ. ५७–५९. कुर्आन् २।११७ तथा ४।१७१ में अल्लाहको अल्कामिल= काफी, पूर्ण कहा गया है। वेदमें भी ईश्वरको पूर्ण कहा है– पूर्णात्पूर्णमुदचति (अ. १०।८।२९) पूर्ण सृष्टि पूर्ण ईश्वरसे उत्पन्न हुई।

नहीं देखा, ऐसा किया है।

प्रश्न २– क्या बाईबलमें अलम् शब्द आया है? किन अर्थोंमें?

उत्तर– जी हां! अलम् यूनानी अथवा इब्रानी (Greek or Hebrew) शब्द बाइबलमें निम्न लिखित अर्थों तथा स्थलोंमें प्रयुक्त हुआ है–

१. Alam= Be dumb= मूक होना ७ स्थलोंमें।
२. „ = Be hid = छुपाया जाना, ८ „ „।
३. „ = Hide = दूसरेको छुपाना, ८ „ „।
४. „ = Hide self= अपनेको छुपाना, ५ „ „।

Alam [अलम्] अरामी (Aramaic) भाषाके शब्दका बाइबलमें प्रयोग—

५.Alam= Ever= शाश्वत, सदा, हमेशा, १३ स्थलोंमें।
६. „ = Everlasting= सदा रहनेवाला, ४ „ „।×

हमारा यह मन्तव्य पग पग पर सत्य सिद्ध होता है कि संसारके धर्म तथा संस्कृतिका आदि स्रोत वेद है। बाइबल कुर्आनसे प्राचीन होनेके कारण वेदके अधिक समीप है। अतः संभव है कि कुछेक बातें जो कुर्आनसे सिद्ध न हो सकती हों, वे बाइबलसे प्रकाशित हो जाएं। अलम् शब्दके उपर्युक्त छे अर्थ हमें निम्न संकेत दे रहे हैं–

यदि अलम् किसी पदार्थका नाम है, तो वह पदार्थ–

१. अन्य अनेकों कार्य करते हुए भी सदा चुपचाप रहता है, अर्थात् बोलता कभी नहीं [क्या यह सूर्य तो नहीं?]

२. किसी अन्य पदार्थद्वारा छुपाया भी जा सकता है [यथा बादलों, आंधिओंद्वारा अथवा सूर्य-ग्रहणमें सूर्य।]

३. किसी दूसरेको भी छुपा लेता है [यथा सूर्य चंद्रग्रहणका कारण बनता है, अथवा पानीको भाप बनाके अदृष्ट कर डालता है, अथवा प्रलयकालमें ग्रहों–उपग्रहोंके लयका कारण बनता है, अथवा मुक्तात्माओंको अपनेमें छुपा लेता है]

४. स्वयमेव छुप भी जाता है अर्थात् उदय और अस्त होता रहता है [यथा सूर्य *] इसी कारण फारसी भाषामें इसे खुदा= स्वयं आनेवाला= स्वयंभूः कहते हैं।

५–६. पृथिवी आदिकी अपेक्षामें वह चिरकाल तक स्थिर रहनेवाला अथवा नित्य है। [सूर्यसे सृष्टि उत्पन्न होती और उसीमें लीन भी होती है, अतः वह पदार्थ सूर्यही है। शास्त्रोंमें सूर्य तथा निराकार आत्माके गुणोंमें बड़ी समानता है] उक्त प्रकार कन्कार्डन्सके संकेतोंसे हमें ऐसा भास होता है कि अलम् एक पूर्ण शब्द है और उसका अर्थ सूर्य है। यह विचार इस बातसे अधिक पुष्ट होता है कि कन्कार्डन्समें अल् शब्द [कदाचित् 'अलम्' का धातु] निम्न अर्थोंमें आया है— Al [अल्]= Above [ऊपर], Over [ऊंचा], Most High [सबसे ऊंचा], On high [ऊपरको]

प्रश्न ३– ठीक! सूर्य सदा ऊंचाही रहता है। परंतु अब आगे सिद्ध कीजिए कि यह विचार संसारकी प्राचीनतम भाषा संस्कृतसे भी पुष्ट होता है वा नहीं?

उत्तर १.– Sanscrit-English Dictionary by Sir Monier Williams की साक्षि–

अल्= अलति to adorn=शृंगारना। To be comp·

× Analytical Concordance to the Holy Bible-Index-Lexican to the Old Testament, by R. Young, LL.D.

* कुर्आन २।२१० में अल्लाहके बादलोंकी छायामें अपने दूतोंसहित आनेका उल्लेख है। ७०।४० में पूर्व-पश्चिमके रब्बि [रबि=सूर्य] की शपथ खाई है। ११३।१ में उषाःकालके रब्बि=सूर्यका आश्रय लेनेकी प्रार्थना है!! ६।७६-९ में कथा है कि जब ह० इब्राहिमने पहली बार एक बड़ा तारा देखा तो कहा कि यह मेरा रब्बि है, जब वह अस्त हुआ तो कहा कि मैं उतरनेवालोंसे प्रेम नहीं किया करता। चांदको देखकर भी ऐसा ही कहा। सूर्यको देखकर कहा कि सबसे बड़ा होनेके कारण यही मेरा रब्बि=परमेश्वर है। परंतु जब वह अस्त हुआ तो कहा कि अस्त होनेवाला परमेश्वर हो नहीं सकता।

पाठको! यदि ह० इब्राहीमको पता होता कि पृथिवीके अपनी कीलपर २४ घंटोंमें घूम आनेके कारणही सूर्यका उदय और अस्त प्रतीत होता है, और यदि वे जानते होते कि यह पृथिवीको अपनी कीलपर घुमानेका कार्य भी जिस रब्बि द्वारा हो रहा है, वह सूर्य ही है, तो वे सूर्यकोही रब्बि माननेमें कभी न हिचकिचाते!!!

etent or able=समर्थ वा शक्तिवान होना। अ० ६।१०९।१ में जीवितवा अलम् तथा मनु. ११।०६ में जीवनाय अलम् शब्द आये हैं, जिनका अर्थ है Sufficient for living=जीते रहनेके लिए पर्याप्त वा काफी। पाणिनि ३।४। ६६ तथा निरु. २।३ में अलम् विज्ञातुम्=Able to conceive=समझने योग्य। अलम् प्रजायाः=capable of obtaining progeny= सन्तानोत्पत्ति करने योग्य।

२. The Practical Sanscrit - English Dictionary by V. S. Apte का मत--

अलंबुद्धिः= Sufficient-sense पर्याप्त ज्ञान। अलंकृ To ornament=विभूषित करना; Decorate= सजाना; Grace=सुशोभित करना। अलंकार=' Decoration= सजावट। अलंकर्तृ=Decorator=सजानेवाला। अलंबलं=Strong enough पर्याप्त बलवाला; शिवकी उपाधि। अलंकारिष्णु= Skilled in decorating= सजावट करनेमें प्रवीण। शिवकी उपाधि।

अब सिद्ध हुआ कि अलं वा अलम् शब्द मूलतः वेद वा संस्कृत भाषाका है, पश्चात् यह यूनानी आदि भाषाओंमें गमन करता हुआ अरबीमें आ पहुंचा और प्रत्येक भाषामें अर्थ-भेद होता गया। उक्त अर्थोंपर विचार करनेसे सहजही बोध होगा कि अलम् अल्लाह, खुदा वा सूर्यका नाम है, वही जीवोंकी हर आवश्यकताके लिए पर्याप्त, अत्यंत शक्तिशाली, संसारको सजानेवाला, ज्ञानी और ज्ञानदाता, संसारका उत्पादक पालक, तथा संहारक-ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव है और ये तीनों गुण सूर्यके हैं।

प्रश्न ४— कुर्आन्के अध्याय २ सूरत बकर के प्रारंभमें आये अलम् शब्दका सूर्य अर्थ हम तो तब मानेंगे जब इस अध्यायमें कहीं सजावट वा शृंगारका वर्णन आया हो।

उत्तर— २।१३८ पढिए। (हे मुसलमानों!) इन्हें कहो कि हम तो अल्लाह [सूर्य] के रंगमें (रंगे गए हैं) और अल्लाहकी अपेक्षा और किसका रंग अधिक उत्तम होगा? और हम उसीकी भक्ति करते हैं।

वेदमें भी सूर्यको रंगदा= रंग देनेवाला कहा है। अतः अल्लाह= सूर्य!

प्रश्न ५— दूसरे अध्यायका नाम है बकर जिसका अर्थ है बैल (Bull) वा गौ (Cow), और अध्यायका पहिला शब्द है अलम्। अब यदि अलम् का अर्थ सूर्य है, तो बताइये कि इसका बकर शब्दसे क्या संबंध? क्या बकर शब्द भी संस्कृतका है?

उत्तर— अलम् और बकरके बडे गूढ संबंध हैं- (१) बकुरः शब्द संस्कृतका है जिसके अर्थ हैं Lightning, Thunderbolt, विद्युत् बिजली। अब बताइये कि बकुर [बिजली] का अलम् [सूर्य] से घनिष्ठ संबंध है वा नहीं? यही बकुर अरबीका बकर बना है!! जो द्युलोकमें सूर्य है वही अन्तरिक्षमें विद्युत् बना है और पृथिवी पर अग्नि।

२. यदि अरबीके बकर शब्दका अर्थ बैल किया जाय, तो वेदमें भी वृषभ शब्द बैल=इन्द्र=सूर्यके अर्थोंमें आया है, देखो ऋ. १०।८६।१५ फिर बताइये कि बकर= वृषभ बराबर हुए अलम=सूर्यके वा नहीं!

३. जिस प्रकार अलम् शब्द मूलतः संस्कृतका होते हुए यूनानी आदि भाषाओंमें घूमते हुए अरबीमें गया, ठीक उसी प्रकार संस्कृतका बकुरः शब्द यूनानी आदि भाषाओंमें BAQAR के रूपमें घुसकर कुर्आनसे भी पहिले बाइबलमें निम्न अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है—

BAQAR=Enquire पूछना। Seek out=ढूंढ निकालना। Search, Seek=ढूंढना [यथा सूर्य-किरणें प्रत्येक वस्तुको टटोलती हैं]

Bull, cow, Beeve = बैल, गौ, गोमांस। Herd =जमाव, गल्ला, झुंड = Body of cattle = चतुष्पाद प्राणियोंका समूह, इस अर्थमें ४४ बार बकर शब्द बाइबलमें प्रयुक्त हुआ है, और Oxen = बैलोंके अर्थोंमें ७५ बार। संस्कृतमेंभी गो शब्द बडे व्यापक अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है, इसके कुछेक अर्थ हैं- गौ, बैल, गोका दूध, दही, घी, गोबर, मूत्र, मांस, चमडा। पांच ज्ञानेन्द्रियाँ। चलनेवाले सभी पदार्थ यथा चक्की, पृथिवी, बंदूक, तोप, बिजली और सूर्य चंद्रमा की किरणें, उषःकाल आदि।

अब यदि कुर्आनके बकर शब्दका अर्थ गो किया जाय और गोका अर्थ उषःकाल वा सूर्यकिरणें, तो बताइये कि अलम् = सूर्य से बकर=गोका अटूट संबंध सिद्ध हुआ वा नहीं? और साथ ही संस्कृत का बकुर ही अरबी यूनानी आदिका बकर सिद्ध हुआ वा नहीं?

प्रश्न ६.– ऐसा वेदमंत्र बताओ कि जिसमें 'गो' का अर्थ सूर्य-किरण किया गया हो ?

उत्तर–

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते । गां रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि (अ० १।२२।१)

अर्थ– (ते हरिमा) तेरा पीलापन- पाण्डु रोग तथा (हृद्-द्योतः) हृदयकी जलन = हृदय रोग (सूर्यं अनु) सूर्यके अनुकूलतासे (उत् अयतां) उठ जाय । (गोः) सूर्यकिरणोंके (तेन रोहितस्य वर्णेन) उस लाल रंगसे (त्वा परि दध्मसि) तुझे सब ओरसे धारण करता हूं ।। १ ।।

प्रश्न ७– यहांतक आपने **अलम्** शब्दका तो एक निश्चित अर्थ **सूर्य** किया, परंतु **बकर** शब्दका अब एक ऐसा निश्चित अर्थ बताइये, जो न्यूनसे न्यून सारी सूरत बकर पर लागू होता हो और जिसके अनुसार इस सूरतमें आए बकर शब्दका सर्वत्र एकसा अर्थ हो सके ।

उत्तर— हमारे विचारमें सूरत बकरके शीर्षक-स्थानीय **बकर** शब्दका अर्थ है **उषा** गो । आयत १ में आए एकही **अलम्** शब्दका अर्थ है **सूर्य** । अर्थात् उषारूपी गो=सूर्यके आश्रयसे रहती है× । आयत २,३ का हमारा अनुवाद ऐसा होगा–

[जिस सूर्यसे उत्पन्न] निःसंदेह वह पुस्तक [वेद] है, जिसमें संयम करनेवालोंके लिए सन्मार्ग–दर्शन है ॥ २॥ [संयमी वे हैं] जो अदृष्टपर विश्वास रखते, प्रार्थना आदि करते और जो हमारे दिए हुए धनमेंसे व्यय करते हैं ॥ ३ ॥

इस प्रकार जिन तीन अक्षरों **अलिफ, लाम्, मीम्**, पूर्वापार संबंध गत १३६५ वर्षसे मुस्लिम विद्वान् लगा न सके थे, उसका यथेष्ट संबंध हमने **अलम्** को एक शब्द मानते हुए, लगा दिखाया है ! ईश्वरीय ज्ञानका प्रकटीकरण जिब्रीलद्वारा होना ईसाई तथा मुसलमान दोनों मानते हैं और जिब्रील या Gabriel सूर्यका नाम है, यह हमने पूर्वही सिद्ध किया है !

शंका— आपने शीर्षक [Heading] तथा प्रथम तीन आयतोंकी संगति ठीक लगाई है, परंतु मुस्लिम भाष्यकारोंका मत है कि **बकर** नाम चतुष्पाद प्राणी= गो पशुका है ! उनका कथन है कि २।६७-७१ तक गो-वध करनेकी आज्ञा कुर्आनने दी है और इसी कारण सारी सूरत का नाम **बकर** = गो प्राणी पडा ! इस अन्तरीय साक्षि के विरुद्ध आप किस प्रकार **बकर** को **उषा** सिद्ध कर सकेंगे ?

समाधान– सूरतोंके बीच आई आयतोंकी संगति हमें अवश्यही **अलम्** अथवा शीर्षकोंसे लगानी पडेगी और जब ऐसा अवसर आएगा तब हम २ । ६७-७३ तककी आयतोंका संबंध उषासे लगा दिखाएँगे । इस लेखमें वैसा करनेसे एक तो लेखका कलेवर बेहद बढ जायगा और दूसरा हम अपने उद्दिष्टसे दूर जा पडेंगे । इस लेखमें हमें इतनाही सिद्ध करना है कि कुर्आनकी सूरतों सं० २, ३, २९, ३०, ३१, ३२ के आरंभमें जो **अलम्** शब्द आया है, उसका संबंध सूरतोंके शीर्षकों तथा **अलम्** के बाद आनेवाली एक दो आयतोंसेभी लग सकता है ! आजतकके भाष्यकारोंमेंसे कोईभी इस प्रकार की संगति लगा नहीं सका है, अतः **यह एक कुर्आनके विषयकी अद्वितीय खोज है !**

प्रश्न– ८ 'अलम्' शब्द तो कुर्आनकी तीसरी सूरत आले इम्रानकाभी, पहिला शब्द है । अतः बताइये कि वहां अलम् = सूर्यका 'इम्रान' शीर्षकके साथ क्या संबंध है ?

उत्तर– बाइबलका AMRAM=अमरं शब्द [जिसका कन्कार्डन्सकृत अर्थ है Exalted people = ऊपर उठाए गए लोग = मुक्तात्माएं] ही कुर्आनमें **इम्रान** बना है । संस्कृतका **आलय** शब्द लगभग उसी रूपमें अरबीमें आया है । अब **आले+इम्रान**= आलय + अमर = अमरालय = 'मुक्त आत्माओंका स्थान' यह हुआ कुर्आनकी तीसरी सूरतका नाम । आगे पहिला शब्द है '**अलम्**' = सूर्य । अब दोनोंका अर्थ हुआ "**मुक्तात्माओंका स्थान सूर्य है !**" इसीके साथ आयत २, ३, को

× **उषासो... रुशन्तं भानुं अरुषीः अशिश्रयुः** ॥ (ऋ० १।९२।१)

अर्थ– रक्तिम आभावाली उषा गौएं दीप्तिमान् सूर्य-किरणोंके सहारे खडी हैं ॥ (२) ऋग्वेदका **मण्डल** शब्दही कुर्आन में **मंजिल** बन गया है । अरबीमें 'ड' शब्द नहीं है, अतः 'ड' के स्थानमें ज = Z लिखा पढा जाता है । **उषा** देवताके जिस प्रकार कई मंत्र ऋग्वेदके पहिले मंडलमें आये हैं, ठीक उसी प्रकार **बकर** [उषा]का वर्णन कुर्आनके पहिली मंजिल में आया है ! क्या ये समानताएं अकस्मात हो गई हैं ! कदापि नहीं ! इन्हींसे प्रेरित होकर हमने यहां **बकर** का अर्थ **उषा** गो किया है।

को भी मिलाकर पढो। "वही अल्लाह है, जिसके बिना और कोई उपास्य नहीं और जो स्वयं सदा अमर रहनेके कारण सृष्टिके सदा × पालन-पोषण करता रहता है ॥ २ ॥ उसने तुमपर सत्यज्ञानकी पुस्तक उतारी...॥ ३ ॥'

देखिए! वेदज्ञान के आधारसे कुर्आनके कैसे सुन्दर अर्थ लग सकते हैं और सूरतके नाम, अलम् शब्द [पहिली आयत या वाक्य] और दूसरी तथा तीसरी आयतकी कैसी सुसंगति लगती है। इसके विपरीत मुस्लिम भाष्यकारोंका मत है कि- चूंकि ३२ वीं आयतमें इम्रानका नाम आया है, जोकि ह० मूसा और हारूनका पिता था, इसलिये इस सूरतका नाम आले इमरान पडा, जिसका अर्थ है the Family of Amram अमरंका कुटुंब। हमारे अर्थोंसे न केवल शीर्षक और तीन आयतोंकी संगति ठीक लगती है, अपितु अल्लाह स्वयं भी सूर्य तथा उपास्य सिद्ध होता है !! इसी कारण मुसलमान अल्लाहको ७ वें आसमानपर स्थित और वहां रहते हुए अपने देवदूतों [किरणों] द्वारा पृथिवीका कार्य संभालनेवाला मानते हैं !!! ऐसा अल्लाह सूर्यके सिवा और कौन हो सकता है, जो कि ह० इब्राहीमकी प्रत्यक्षताकी कसौटीपर भी पूरा उतरता हो ?

प्रश्न ९- कुर्आनकी २९ वीं सूरतका नाम है अल अन्कबूत=the Spider=वह मकडी और वहां भी सूरतका प्रथम शब्द या आयत है **अलम्**। इनकी संगति लगा दिखाइए।

उत्तर-१ यदि यह संस्कृत शब्द माना जाय तो वह शब्द है ***अन्+कपोत** अर्थात् आत्मारूपी कबूतर या पक्षी = the Soul pigeon or Bird. अरबीमें 'प' शब्द नहीं है, अतः अन्य भाषाओंसे आए 'प' के शब्द सदैव 'ब' में बोले जाते हैं, इसी लिए **अन्कपोत** को अन्कबूत लिखा पडा गया। आपटेके कोशमें **पक्षिन् शब्द गरुड, शिव= सूर्य के अर्थोंमें भी आया है।**

अब २९ वीं सूरतका शीर्षक हुआ 'आत्मारूपी **कबूतर या पक्षी**' और अगलेही शब्दमें समझा दिया कि वह पक्षी अलम् सूर्य है! देखिए! वेदका सहारा लेनेसे यह तीसरी बार भी अलम् और सूरतके नामकी कैसी उत्तम संगति लगी।

२. मौ० मुहम्मद अलीने अरबीके रूह = 'आत्मा' शब्दका अर्थ Revelation = ज्ञानप्रकाश भी किया है, अतः इस अर्थमें शीर्षक **अन्कपोतका अर्थ होगा, ईश्वरीय ज्ञानको प्रकट करनेवाला कबूतर।** वह कबूतर कौन ? आगे उत्तर है 'अलम् = सूर्य! अरबीके अन्+कबूतमें कबूत = कबूतर ही है। मुसलमान मानते भी हैं कि ह० मुहम्मद सा० पर **वही**=प्रकटीकरण कबूतरके रूपमें उतरा करती थी! परंतु अर्थ करते समय इस बातको भुला दिया!

शंका- क्या ईश्वरी ज्ञानके प्रकटीकरण कपोत = कबूतर पक्षिद्वारा होनेके सिद्धान्तका वेदभी समर्थन करता है ?

समाधान- वेदसे ही यह सिद्धान्त मुसलमानोंने लिया था, परंतु आर्य-समाजकी टीकाओंसे घबराकर अब इसे छोडते भी आ रहे हैं !! ऋग्वेद १०।१६५ का ऋषि है **नैर्ऋतः कपोतः**, और देवता है **विश्वे देवाः** = सूर्य-चंद्रादि। इसमें बताया गया है कि सूर्य आदि ही ईश्वरीय संदेश पहुंचाया करते हैं। यही **जिब्रिल है**, यही कबूतर है !! उक्त दो संगतियां हमने **अन्कपोत** एक संस्कृत शब्द है ऐसा मानकर लगाई है। अब **अन्कबूत** को अरबी शब्द मानकर संगति लगाते हैं।

३. अरबीमें **अन्** का अर्थ है '**दूरका**' और कबूत= कबूतर। यह दूर रहनेवाला कबूतर कौन ? आगे उत्तर है **अलम्=सूर्य**!

४. यह 'अन्कबूत' शब्द अरबी धातु **अन्कसे** निकला है जिसका अर्थ है "हर वस्तुका मूल और जड = Foundation' सृष्टिकी मूल मकडी कौन! अलम्=सूर्य!

५. मुसलमान भाष्यकारोंने अन्कबूतका अर्थ spider = मकडी किया है। वही सूर्यरूपी मकडी है, जिसने यह नश्वर चराचर जगत् अपनेमेंसे उत्पन्न किया है। यह संसार मकडी के जालेके समान ही Frail = क्षणभंगुर है! परंतु यह सुसंगति भी तभी लग सकती है, जब अलम् का अर्थ सूर्य किया जाय!

मौ० मु० अली लिखते हैं कि इस अध्यायका नाम मकडी अन्कबूत इसलिए रखा गया है कि झूटों, मूर्तिपूजकों तथा

× अलम् = अल्लाह = सूर्य है यह संबंध आगे ४ से ८, तथा १६-१७ आयतोंतक बराबर लगता जाता है।

* अन्=the soul = आत्मा। ऋ. ४। ३०। ३ मंत्रका देवता इन्द्रः है।

बहुदेवपूजकोंको इस सूरतमें मकडीके जालेके समान क्षण-भंगुर* समझा गया है। परंतु 'अलम्' की संगति इस मकडीसे लग सका न सके और यथापूर्व उसका अर्थ " मैं अल्लाह सबसे अच्छा जाननेवाला हूं " ऐसाही कर दिया ! छहों सूरतोंमें आपने यही अर्थ किया है !

शंका— क्या यह मकडीके ताने बाने = जाले बनानेकी कथा भी वेदसे कुर्आनमें आयी है ?

समाधान— अवश्य ! अथर्ववेद १०।७।४२-४४ का आशय है— ' दिन-रूपी गोरी तथा रात्ररूपी काली ये दो युवा स्त्रियां या मकडियां छः ऋतुरूपी खूंटियोंपर कालरूपी कपडा संवत्सर-रूपी खड्डीपर बुन रही हैं। एकके बाद दूसरी आती है और अपना काम करके चली जाती है। न कोई थकती है और काम समाप्त होता है ! इनमें पहिली कौन यह जानना भी कठिन है, इत्यादि। '

इन मंत्रोंका देवता स्कम्भ या आत्मा = सूर्य ही है ।

प्रश्न १०— कुर्आनकी ३० वी सूरतका नाम है अल्-रूम =the Romans, और पहिला शब्द है अलम् ! यहां भला रूम और अलम्की संगति कैसे लगेगी ?

उत्तर— रूमः संस्कृतका शब्द है। जिसका अर्थ है ' पीले अथवा गेहूंके रंगका पुरुष=Tawny man, ' अथवा ' तेजस्वी पुरुष=Bright man. ' सुग्रीवकी पत्नीका नाम रूमा था [आपटे]

कुर्आनके शीर्षकमें प्रश्न है कि ' पीला तथा तेजस्वी पुरुष ' कौन ! आगे उत्तर है ' अलम्=सूर्य ! ' कहिए ! कैसी उत्तम संगति लगी ! परंतु मौ. मु. अलीका मत है कि कुर्आनने भविष्य-कथन किया था कि रोमन लोग ईरानियोंपर विजय पाएंगे, इसलिए इस सूरतका नाम अल्—रूम पडा ! परंतु मौलवीसाहबने नोट २५३० में भविष्यवक्ताओं (Diviners, Kahins and Astrologers) को काफिर सिद्ध किया है, और स्वयं कुर्आनने भी ६७५, ५२।२९ आदिमें इस बातको बुरा माना है ! फिर भला भविष्य बोलना स्वयं कुर्आनके लिए क्योंकर शोभादायक है ?

प्रश्न ११ — कुर्आनकी ३१ वीं सूरतका नाम है लुकमान और इसकी भी पहली आयत है अलम् । इनकी संगति कैसे लगेगी ?

उत्तर— मौ. मु अलीका मत है कि इस सूरतमें हबशी-[काले रंगके=Ethopean] लुकमान का वर्णन है, इस लिये इस सूरतका नाम लुकमान पडा। आगे लिखा है कि लुकमान और यूनानका ईसप [Greek Aesop] एक ही हैं !

[हबशी काला और यूनानी गोरा ! ये पुरुष एक कैसे हो सकते हैं ? अतः यहां भी गोलमालसा दीखता है]

हमारा मत है कि यह अरबीका लुकमान संस्कृतके लोकमान्य शब्दका बिगाड है, जिसके अर्थ हैं लोक-पूजित, Honoured by the people, अतः शीर्षकमें मानो प्रश्न है कि लोकमान्य कौन ? पहिली आयतमें उत्तर है अलम् [सूर्य ! किस कारण लोकमान्य बना ? इसका उत्तर आगे २ से ५ तक की आयतोंमें दिया है कि उससे वेद प्रकट हुए इसलिये और उसी वेदसे कुर्आन उतरा इसलिये सूर्य लोक-पूजित है, यथा—

" ये उसी ज्ञानकी पुस्तककी [वेदकी] आयतें हैं।। २ ।। जो कि सुकर्म-कर्ताओंके लिए सन्मार्ग और दया हैं ।। ३ ।। जो सुकर्मी प्रार्थना करते (नमाज पढते), जकात (Poor-rate) देते हैं और जिन्हें परलोकपर विश्वास है ।। ४ ।। यही लोग अपने रब्बि [रवि] से प्रेरित हुए हैं और यही (अपने मनोरथोंमें) सफल होंगे ।। ५ ।। "

पाठको ! इस सूरतमें तो शीर्षककी पूरी ५ आयतोंसे संगति लग गई !

अरबीमें ' लोकामन्य टिलक ' को ' लुकमान तिलक ' लिखा पढा जायगा, क्योंकि अरबीमें ' ट ' व्यंजन नहीं है ।

प्रश्न १२— समस्त कुर्आनमें छः बारही अलम् शब्द सूरतोंके आरंभमें आया है और इनमेंसे आपने पांचकी संगति शीर्षकसे बडीही उत्तमतासे लगाई है। अब रही अन्तिम ३२ वीं सूरत जिसका नाम है अल्सजदः=the Adoration= पूजा=स्तुति+प्रार्थना+उपासना। अगली आयत है अलम्। इनकी

---

* कुर्आनको बने १३६५ वर्ष हुए, परंतु, आजभी बौद्ध, जैन, रोमन कॅथॉलिक, ईसाई, हिन्दू, तथा स्वयं मुसलमान कबर, ताबिया, आदि मूर्तिपूजकों की संख्या संसारकी जनसंख्याका ३/४ भाग है !! फिर ये क्षणभंगुर कैसे ? अतः यह युक्ति असत्य और प्रत्यक्ष के विरुद्ध है।

संगति कैसे लगेगी ?

उत्तर— शीर्षकमें आज्ञा है कि ' पूजा ' करो ! किसकी ? आगे उत्तर है अलम=सूर्यकी ! क्यों ? " इसलिए कि किताब का प्रकटीकरण निःसंदेह उसी संसारोंके रब्बि [रवि=सूर्य] की ओरसे है ॥ ३२।२ ॥

यहां भी शीर्षककी संगति दो आयतोंसे ठीक और बडी उत्तमतासे लग गई ! यही नहीं आगे आयत ३ से ११ तक भी वही संगति अलम् का अर्थ सूर्य करनेके कारण बराबर लगती जाती है, परंतु विस्तारभयसे हम इन्हें दिखा नहीं सकते। जिज्ञासु स्वयं कुर्आन पढकर देखें।

पाठको ! जिस शब्दका अर्थ आजतक किसी भी मनुष्यपर प्रकट नहीं हुआ था, उसका एक निश्चित अर्थ सूर्य इस तुच्छ व्यक्तिपर प्रकट करना भी उसी सूर्यकी कृपा है, जिससे हम प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं कि ' धियो यो नः प्रचोदयात् '(य. ३६।३) जिस अलम् शब्दका संबंध सूरतके नाम तथा अलम् अथवा पहिली आयतके पश्चात् आने-वाली आयतोंसे आजतक कोई न लगा सका था, वह संबंध कुर्आनकी समस्त छहों आयतोंमें उसी सूर्यकी सहायतासे हमने लगा दिखाया है !! परंतु इतना तबही संभव हुआ जब हमने अलम् को एक पूरा शब्द माना। अलम् एक पूरा शब्द है, तीन पृथक् पृथक् अक्षर नहीं। इसका अत्यंत पुष्ट प्रमाण इस बातसे भी मिलता है कि स्वयं कुर्आनमें भी सर्वत्र यह एक शब्द के रूपमेंही लिखा गया है !!!

गीताका राजकीय तत्त्वालोचन

(लेखक– पं० श्री० दा० सातवळेकर, ' गीतालंकार ')

भगवद्गीताकी आलोचना धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे करनेकी रीति सुप्रसिद्ध है। आजतक भगवद्गीताकी आलोचना धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे बहुतोंने अनेक बार की है। इसमें गीताकी आलोचना राजनैतिक दृष्टिसे की है।

भगवद्गीता अध्यात्मशास्त्रका ग्रंथ है, इसमें संदेह नहीं है। परंतु अध्यात्मशास्त्र केवल परलोककाही विचार करता है, ऐसा कहना अशुद्ध है। वैदिक धर्मकी परंपरासे सब शास्त्रोंकी बुनियाद अध्यात्मशास्त्र है। इसलिये राजनैतिक विचारोंकी बुनियाद अध्यात्मशास्त्र कैसी है, यह बात आजकलके दिनोंमें अधिक स्पष्ट होनी चाहिये। इस हेतुसेही इस पुस्तकमें यह बतानेका यत्न किया है और बताया है कि भगवद्गीताका सिद्धान्त वैदिक राज्यशासनके लिये किस दृष्टिसे अनुकूल है।

अध्यात्मज्ञानसे सब दुःख दूर हो सकते हैं और सब सुख तथा आनन्द प्राप्त हो सकते हैं। यदि यह सत्य है तो निःसंदेह अध्यात्मज्ञानसे राजनैतिक दुःख दूर भी दूर होंगे और राजकीय सुख भी प्राप्त होंगे।

अर्जुनकी जीवनीमें जो परिवर्तन हुआ, वह राजनैतिक परिवर्तनही है। स्वराज्य-प्राप्तिका कार्य छोडकर वनमें जाकर ध्यान-धारणा करनेकी इच्छा अर्जुन कर रहा था। भगवद्गीताका उपदेश सुनकर, उसने वनगमन और ध्यान-धारणा करनेका विचार छोड दिया और सामने खडे रहे अपने राष्ट्रीय शत्रुको परास्त करके, अपने स्वराज्यको प्राप्त किया। भगवद्गीताका यह राजनैतिक परिणाम है।

इस पुस्तकमें अध्यात्मशास्त्रके आधारपर राज्यशासन किस तरह चल सकता है, इसका विचार किया है। आशा है कि यह लेखमाला भगवद्गीतापर नयी रोशनी डालेगी और हमारे आर्यशास्त्रोंके अन्दर जो गुप्त विद्या है, उसका प्रकाश करेगी।

इसमें निम्नलिखित लेख हैं– (१) कुरुक्षेत्रकी घोषणा, (२) भगवद्गीताकी कुछ पारिभाषिक संज्ञाओंका अर्थ, (३) सब विश्व एकही अखंड जीवन है, (४) ईश्वरके विश्वरूप-दर्शनका मनुष्यके व्यवहारपर परिणाम, (५) अनन्ययोग, (६) भागवत राज्यशासन, (७) कर्मयोग, (८) क्या कर्म-फलत्यागसे व्यवहार हो सकता है ? (९) योग और व्यवहार, (१०) श्रीमद्भगवद्गीताका ध्येय क्या है ? पृष्ठसंख्या १२०, मू. २) रु., डा. व्य. ॥) मंत्री– स्वाध्याय मंडळ–औंध (सातारा)

प्रवृत्ति और निवृत्ति

(लेखक- श्री. लालचन्द्रजी)

भारतके दुर्भाग्यसे कई सौ वर्षोंसे निवृत्तिका दौरदौरा है। धार्मिक कहलानेवाले लोग प्रायः अपने कर्तव्यसे विमुख, उदासीन वृत्ति धारण किये हुए पर-लोककी चिन्तामें निमग्न हैं। परलोकमें सुख मिले, यही धुन समाई है। जो अपने आपको विरक्त कहते हैं, उनमें तो जगत्से विराम पानेकी उत्कट इच्छा बनी रहती है।

मध्यकालके प्रचलित मतोंने परस्पर हितरूपी सर्वोन्नतिसे पराङ्मुख होनेके भावको बहुत प्रोत्साहन दिया है। वैसे तो बौद्धकाल तथा उसके पश्चात्के वेदान्त-प्रचारके समयसे ही 'जगत् मिथ्या'का सिद्धांत गृहस्थियोंतक में घर किये हुए है।

साधारणतया ज्ञानी वही समझा जाता है जो परलोकके ही स्वप्न ले और गृहस्थके कर्तव्योंसे विमुख होकर अपने आपको जगत्से विरक्त कहे। इसका परिणाम यह हुआ है कि बहुतसे लोग जैसे कैसे जीवन निर्वाह करना ही ध्येय समझने लगे हैं। धन, वैभव की वृद्धिके लिए मिलकर यत्न करना भूल चुके हैं और देश दरिद्र हो गया है। दरिद्र रहना भी भक्तिका एक अंग माना जाने लगा है। 'जगत् बंधन है, संबंध झूठे हैं,' ऐसे विचार बन रहे हैं, पर निजी लोभ नहीं घटा। लोग प्रायः कथा-कीर्तनों में वैराग्य तथा कर्मत्यागकी बातें सुनते रहते हैं।

हमारी आर्यसंस्कृतिके अनुसार त्यागी वह है जिसने अपने निजी हितोंको मर्यादामें रखा है और जो समय आनेपर निजी हितोंको भी सर्व-हितके लिए त्याग देता है, जिसका प्रेम व्यापक हो चुका है। ऐसे सच्चे कर्मशील पुरुषके लिए जो निरंतर सर्व-हितमें लगा रहता हो, भोजन, वस्त्र, निवास आदिकी सुविधा पहुंचाना जनताका कर्तव्य है और भारतवर्षकी जनता अभीतक आदर करना जानती है, किंतु यदि अकर्मण्यताके कारण पराबलंबी अधिक हो जाय और वे सर्व-हित करने की योग्यता न रखते हो, तो ऐसे कर्मत्यागी लोग समाजके लिए भाररूप ही बनेंगे। हरएकका कर्तव्य है कि अपने अपने वर्ण तथा आश्रमका धर्म पालन करे। यदि कोई व्यक्ति कर्मशून्य है, अपने नियत कर्ममें नहीं लगता, तो ऐसा अकर्मण्य जन निन्दनीय समझा जाना चाहिये। ऐसे मनुष्यका सन्मान करना निरुद्यमी तथा निकम्मे लोगोंका भार अपने ऊपर लेना है।

निरंतर उन्नतिके लिये यत्नशील रहना, प्रगतिशील होना, उपकारके कृत्योंमें लगे रहना, करने योग्य कार्यको परिश्रमसे प्रसन्नतापूर्वक करना, प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। कर्तव्यसे परे हटना दोष है। कर्तव्यरत पुरुष ही पुण्यात्मा है। कर्तव्य पूरा करना ही जीवनकी साधना है।

कोई मनुष्यभी अपनी निजी स्थितिके निमित्त शारीरिक कर्म किये विना नहीं रह सकता, तो वह वे कर्तव्य ही क्यों त्याग दे जिनसे परस्पर हित हो? जो मनुष्य सर्वहितके कार्य किये विना समाजसे लाभ-उठाता है, वह कृतघ्न है। कृतघ्नता सबसे बडा पाप है। जो मनुष्य केवल अपना स्वार्थ पूरा करता है, वह पापी है, वह समाजके ऊपर वृथाका भार है।

कोई मनुष्य क्यों विवेकहीन होकर कर्तव्य-त्याग करे और समाजके लिए बोझ बने? जबतक मन इन्द्रिय बुद्धि स्वस्थ है क्यों न व्यक्ति कर्म करता रहे और अपने कर्मोंसे अपना तथा जातिका हित साधन करे? धर्म-कर्म करनेसे मनुष्यका अभ्युदय होता है। जहां गृहस्थी धर्म-कर्म करनेमें अकर्मण्य हो रहे हों किंतु अभ्युदय चाहते हों, उन्हें अभीष्ट की प्राप्ति केवल इच्छामात्रसे नहीं हो सकती।

अकर्मण्य लोगोंके कारण समाजसे वैभव दूर हो जाता है। यदि किसी समाज, जाति वा देशके लोग उदासीन तथा अकर्मण्य होकर देशकी सम्पत्तिमें तो वृद्धि न करें, किंतु ठाली रहते हुए व्यय करनेमें संकोच भी न करें तो ऐसा समाज, जाति वा देश अवश्य दरिद्र हो जायगा। दरिद्र लोगोंमें धीरे धीरे वैभव तथा ऐश्वर्य-की भावनातक लोप हो जाती है। दरिद्रता सदा आलस्य, प्रमाद और अकर्मण्यतासे आया करती है। दरिद्रता स्वयं नहीं आती। दरिद्रताको हम लोग स्वयं बुलाते हैं और फिर दीन दुःखी रहते हुए भाग्यको कोसा करते हैं। ऐसे लोगोंमें अभ्युदय की भावना जाग्रत करना बहुत कठिन हो जाता है, वे तो पतनशील हो जाते हैं, गिरना ही उनका स्वभाव हो जाता है। ऐसे मूढ लोगों

का भूतकाल चाहे कैसा ही वैभवसम्पन्न हो चुका हो, उनका वर्तमान तथा भविष्य कभी उज्ज्वल नहीं हो सकता, जबतक वे स्वयं कर्मशील और पुरुषार्थी न हो जायें। कर्मशील ही धर्मशील है और वही ऐश्वर्यवान् हो जाता है।

मानव-समाज अपनी मनोवृत्तियों तथा कर्मोंके अनुकूलही उन्नत या अवनत होता है। जो लोग अपनी स्थितिसे उदासीन रहते हैं, कभी सावधान होकर ऊपर उठनेके भाव मनमें नहीं लाते, वे सदा परवश तथा पराधीन और त्रसित ही रहेंगे, उन्हें स्वराज्यका सुख कभी न मिल सकेगा, वे तो स्वराज्यकी कल्पना तक भी न करेंगे। क्योंकि स्वराज्यमें अधिकार तो मिलते हैं, पर स्वराज्यमें कर्तव्य-पालनका उत्तरदायित्व भी सिरपर आ जाता है। स्वराज्यमें प्रमादके लिए स्थान नहीं है। स्वराज्य में धन, धान्य, सुख, सम्पत्ति, ऐश्वर्य हर प्रकार की सुविधाएं यत्नशील गतिशील, कर्मशील, अतएव धर्मशील प्रजाओंके कृत्यों के कारण ही हुआ करती हैं।

जो आज पराधीन हैं, उन्हें अपनी स्थितिको निष्पक्ष भाव से जांचना होगा। परवशता तथा आलस्य आदिके कारण जो दोष और अवगुण जड पकड गए हैं, उन्हें निर्मूल करके महत्वाकांक्षाकी सद्भावना जाग्रत करनी होगी, यही स्वराज्य-प्राप्तिका संकल्प है। केवल कामनासे काम नहीं बना करता। स्वराज्यके लिए जो निजी स्वार्थोंकी आहुति देनी है, वही स्वराज्यकी साधना है। यह साधना भगवान् पूरी करते हैं, यदि साधक अपने ध्येयके लिए अनन्यभावसे यत्नशील रहे।

जो लोग अकर्मण्य तथा उदासीन और परलोक-चिन्तनमें डूबे हुए मन्दबुद्धि हो जाते हैं, वे निरुद्यमताको संतोष कहकर अपना मन बहला लेते हैं। उनमें कार्यक्षमता होती नहीं, वे भीरु तथा कायर होते हैं और डरपोक रहते हुए अपने आपको क्षमाशील कहा करते हैं। जहां आलस्य है वहां दरिद्रता है, वैभवका अभाव है, यह संतोष नहीं, यह अकर्मण्यता है, यह घृणित अवस्था है, त्याज्य है, निन्दनीय है। ऐसा जीवन कुत्सित और अनार्य जीवन है। ऐसे लोग चाहे अपने आपको कितना ही आध्यात्मिक वा ज्ञानी कहें, यह उनकी आत्मवंचना है। ये जीवनके रहस्यको भूल चुके हैं, जीवनपथको खो चुके हैं। वास्तवमें ये पथ-भ्रष्ट हैं। ऐसे लोग, जबकि पुरुषार्थी पुरुष सुख-वैभव प्राप्त करते हैं, तो उन्हें जडवादी प्रकृतिवादी कहते हैं और स्वयं आत्मज्ञानी बनते हैं। ये मत तो केवल निरुद्यमी और भाग्यके भरोसे रहनेवाले होते हैं और गतिशील लोगोंसे ईर्ष्या करना तथा उनसे द्वेष करना ही उनका स्वभाव हो जाता है। सत् ज्ञान तथा विज्ञान इनके निकट टिक ही नहीं सकते।

आर्य-संस्कृतिमें दरिद्रता निन्दनीय है। प्रत्येक मनुष्यको अपने अपने कर्तव्यपालन करते हुए ऐश्वर्यवान्, वैभवसम्पन्न बननेका आदेश है। आर्य सभ्यतामें प्रवृत्तिमार्गकी प्रशंसा है। प्रत्येक व्यक्तिको जो अभ्युदय चाहता है, यह ज्ञान होना आवश्यक है कि वह किस अवसरपर, आयुके किस भागमें, क्या कार्य करे और उसे कैसे सम्पादन करे? ऐसा ज्ञान रखने तथा उसके अनुकूल कार्य करनेसे मनुष्य प्रसन्न रहता है और उसका चित्त शान्त रहता है तथा वह नित्य उन्नत होता रहता है। इस प्रकार सामूहिक रूपसे देश उन्नत होता है। कर्तव्यशील मनुष्य जिस देशमें अधिक संख्यामें होंगे, वह देश समृद्ध कहा जायगा। वहांही जनतामें तत्त्वज्ञानी महात्मा पुरुष बनते हैं। ऐसे सत्पुरुष निरंतर ही सर्व-हित-साधनमें लगे रहते हैं और कृतज्ञतापूर्ण जनता उनकी रक्षा तथा हर प्रकारसे सेवा करती है।

सत्कर्ममें प्रवृत्ति रखना मनुष्यका धर्म है, ऐसी प्रवृत्ति सद्-विवेकसेही जाग्रत होती है और निश्चयसे स्थिर होती है। सत्कर्म करनेके लिए बुरे कामोंसे अलग रहना आवश्यक है।

इसलिये प्रवृत्तिका वास्तविक रूप हुआ कर्तव्योंमें पूरी लगनसे लगना तथा निवृत्तिका अर्थ हुआ, उन कर्मोंसे जो व्यक्ति तथा समाजके लिए हानिकर हैं, परे हटना।

जो निवृत्तिमार्ग आजकल देशमें प्रचलित हैं, दम्भ, मिथ्याचार फैला रहे हैं, क्योंकि ऐसे लोग निकम्मे रहते हुए व्यर्थ जीवन खो रहे हैं। झूठी निवृत्तिका अंधकारमय जीवन जितनी जल्दी बदल दिया जाय, उतनाही अच्छा होगा। **निवृत्तिका असली रूप दोषोंका त्याग है। कर्मत्याग निवृत्ति नहीं, कर्मत्याग तो अधोगति है। आलस्य छोडना, प्रमाद त्यागना, छल कपट दंभसे परे हटनाही निवृत्ति है।**

परिवारके पालन-पोषण, पुत्र-पुत्रियोंके योग्य बनानेमें तत्पर रहना, पडोसियोंकी उन्नतिमें सहायता देना, समाज, जाति, तथा देशकी उन्नतिके लिए तन. मन. धन. तथा समय देना प्रवृत्तिमार्ग

हैं, इसीमें सबका परम हित है, यही श्रेष्ठतम कर्म है, यही यज्ञ है, इसीमें सर्वकल्याण है सबका लाभ है।

देशमें 'जगत् मिथ्या'का थोथा विचार जितनी जल्दी दूर कर दिया जाय उतनाही अच्छा है। संसार गतिशील है, इससे तो यह शिक्षा मिलती है कि हम भी निरालस होकर कर्मशील बनें, सब पदार्थोंकी उपयोगिताका विज्ञान प्राप्त करें और उपादेय पदार्थोंका तथा ऐश्वर्य और सम्पत्तिका त्यागपूर्वक भोग करें और सबकी उन्नतिमेंही अपनी उन्नति समझें।

जो कोई भी सार्वजनिक सर्वहितके कार्योंके लिये अपना धन तथा समय देता है और तन मनसे पूरी लगनसे सर्वोदयमें भाग लेता है, वह देश और जातिका परम हित करनेके कारण प्रवृत्तिमें भी अचल निवृत्तिके तत्वको समझ गया है। जिसमें अनन्यता, समता और प्रेमका भाव स्थिर है, वह अपने समयको अभ्युदय तथा जगत् कल्याणके लिये लगाता है, अपने धनको भी व्यापारमें लगाकर देशको समृद्ध करता है, वही प्रवृत्ति तथा निवृत्तिके रहस्यको समझा है। शुभ काम वे हैं जिनसे अपना तथा सब का भला हो, उनमें प्रवृत्त होना तथा मोह, ममता, राग, द्वेष आदि बंधनोंसे अलग होना, उन कामोंसे निवृत्त होना जिनमें फँसकर मनुष्य सार्वजनिक कार्योंमें नहीं लग सकता, यही प्रवृत्ति तथा निवृत्तिके तत्वको ठीक समझना है।

जो स्वार्थी है, निरन्तर निजी हितोंकी ही जिसे चिन्ता है, जो केवल अपना पेट पालनाही जानता है, वह तो असुर है; उसमें न तो पवित्रता होती है, न सत्य होता है और न वह प्रवृत्ति अथवा निवृत्तिके रहस्यको समझ सकता है। ऐसा मनुष्य तो क्रूर, कठोर और कृपण होता है। वह कर्तव्यशून्य मनुष्य केवल मृत्युके लियेही जीवन धारण करता है। उसकी प्रवृत्ति उसके लिये बंधन है, अभिशाप है।

वैभव हो, सम्पत्ति हो, ऐश्वर्य हो, हर प्रकारकी बाहुल्यता हो और भाव हरएकके मनमें एक दूसरेकी सहायताका हो तथा परस्परकी उन्नतिमें सबको सच्ची प्रसन्नता हो, तो ऐसे मनुष्य जो कार्य करते हैं, उस प्रवृत्तिमें दुःख, क्लेश और भयसे निवृत्ति होती है और व्यक्ति, समाज तथा देशका कल्याण होता है।

उन्नत समाज

मनुष्योंके अन्दर कुछ गुण होते हैं, जिनसे समाजका पालन पोषण और रक्षण होता है और कुछ अवगुण होते हैं जिनसे समाजका ह्रास हुआ करता है। जिन लोगोंमें पोषक गुण होते हैं, उनका समाजमें आदर होता है और जिनमें नाशक गुण होते हैं, उनका अपयश होता है।

जिन मनुष्योंमें सत्यप्रियता, तथा सर्वोन्नतिके लिये आत्मसर्वस्व अर्पण करनेकी तत्परता है, वे ही समाजका उद्धार कर सकते हैं। जो सामुदायिक रूपसे सत्यका पालन करते हैं, वे समाजकी उन्नतिमें सहायक होते है। व्यक्तिगत सत्यको पालन करनेवाले भी कभी कभी स्वार्थ-वश समाजको हानि पहुंचानेका कारण बन जाते हैं। जो मनुष्य सत्यवादी तो है पर उसका और लोगोंसे नैतिक व्यवहार नहीं है, उचित अनुचितको जांचे बिना वह अपनी तीखी पैनी वाणीसे बोलता रहता हो और उसके बर्तावमें कुटिलता हो तो ऐसा मनुष्य समाजकी उन्नतिमें विघ्नकारी होता है। व्यवहार सरल हो, वाणी मधुर हो, विवेकयुक्त हो,नीति निष्कपट हो, तभी आपस में विश्वास बढता है और एक दूसरेके अधिकारपर दबाव डालनेकी आदत जाती रहती है, इसलिए सत्य विचारके साथ साथ ऋजु नीति भी आवश्यक है।

एक समाजकी शक्ति केवल उसके ऐश्वर्यहीसे नहीं जांची जा सकती। वह समाज शक्तिशाली है, जिसमें सदाचारका नैतिक बल हो और जहां मनुष्योंके आदर्श ऊंचे हो, उनकी आकांक्षा में महत्त्व हो, तथा व्यापकता हो। किसी समाजकी नींव दृढ नहीं समझी जा सकती, जबतक कि उस समाजके व्यक्ति, वीर और परिश्रमी न हो। किसी समाजकी महानता उस समाजके व्यक्तियोंके स्वार्थत्याग, परस्पर प्रेम, एकताकी भावना, मिलकर कार्य करनेकी शक्तिपर निर्भर है। एक उद्देश्यसे उच्च आदर्श सामने रखकर जब सामूहिक हितके लिए कार्य लगनसे, स्थिरता-से, धैर्यसे, दृढतासे, उल्लास और प्रसन्नतासे किये जाते हैं तो वह समाज अवश्य उन्नत होता है। वह समाज महान् और शक्तिशाली माना जाता है, जिस समाजमें मनुष्य सत्य तथा मानमर्यादाके लिए आत्म अर्पण करनेमें नहीं हिचकिचाते, सदा बलिदानके लिए तत्पर रहते हैं, संकल्पमें पक्के रहते हैं और विघ्नबाधाओंकी उपेक्षा करते हैं, उद्देश्य-पूर्तिके लिए कष्ट सहनेमें आनाकानी नहीं करते, वही समाज उन्नत होती है। जिस समाजके व्यक्ति कर्तव्यशील होते हैं, वे सदा क्रियाशील यत्नशील पुरुषार्थी होते हैं और वे उद्योगमें लगे रहते हैं जब कि अन्य जन सोया करते हैं। जिस समाजके व्यक्ति साहस करते हैं जब कि अन्य

लोग अपने कार्यक्षेत्रसे भाग जाते हैं वे ही समाजके आधारस्तम्भ हुआ करते हैं और समाजके यशकी पताकाको ऊंचा करते हैं। संसार विवश होकर उनकी कीर्तिके गीत गाता है। ऐसी समाज ही धार्मिक कही जा सकती है। ऐसी समाज सर्वोन्नतिरूपी ध्येयकी साधनामें सफल होती है। सामूहिक कार्यकी सिद्धिके लिए अपने स्वार्थोंकी आहुति देना ही यशका रहस्य है।

जिस समाजके मनुष्य दक्ष हैं, अपनी सामूहिक भलाईको सदा भली प्रकार समझते हैं और अपने ध्येयकी साधनामें जुटे रहते हैं, जिस समाजमें मनुष्योंके अन्दर निर्माण की, नए नए आविष्कारोंकी, नए नए अनुभवों की उत्साहभरी उमंग रहती है, जिनके कार्य साधनमें तेजस्विता, उग्रता रहती है, जो व्यक्ति कार्यके संपादनमें ढीलापन नहीं आने देते, जिनमें आलस्य और प्रमाद नहीं होता, जिनमें सदा महत्वाकांक्षा रहती है, जिनमें कार्य-साधन तथा अपनी स्थितिकी उन्नतिकी सदा ज्ञानयुक्त चेष्टा रहती है, जो उदासीन नहीं रहते, सदा आगे बढनेकी जिनमें रुचि रहती है, वह समाज उन्नतिशील है। उस समाजमें दरिद्रता नहीं हो सकती और वे दरिद्रताके कारण होनेवाले पतनसे सदा बचे रहते हैं। वे अपने आपको अपने आपसे ऊंचा उठाते हैं, गिराते नहीं। मनुष्यका कर्तव्य भी तो ऊपर उठना है, नीचे गिरना नहीं।

उन्नत समाजका प्रत्येक व्यक्ति समाजकी सामूहिक और सर्वांग उन्नतिमें ही अपना गौरव समझता है। ऐसे समाजमें मनुष्य दैवके भरोसे अकर्मण्य नहीं होते, वे भगवान्के आश्रय सदा पुरुषार्थी रहते हैं, आप उन्नत होते हैं और समाजकी उन्नतिमें सहयोग देते हैं, ऐसे मनुष्य दैवी प्रकृतिके होते हैं।

दैवी प्रकृतिके मनुष्य निर्भय होते हैं, उनकी वृत्ति शुद्ध सात्विक रहती है, वे सब कार्योंको जिस उल्लाससे आरंभ करते हैं उसी उत्साहसे अंततक प्रसन्नचित्त होकर करते हैं, उनकी जीवनचर्यामें ज्ञानयुक्त कर्मही सदा होते हैं, वे उदार होते हैं, उनका अपनी इन्द्रियों तथा मन पर अधिकार होता है, वे आज्ञापालन, प्रेम तथा दयाके तत्वको जानकर सदा सबसे योग्य बर्ताव करते हैं, वे अपने कर्तव्य दक्षतासे करते हैं और कर्तव्योंको करते हुए सचेत रहते हैं, उनका जीवन सरल सीधा और सच्चा होता है, वे द्रोह नहीं करते, वे क्रोधके वशमें होकर अपना क्षय नहीं करते; उनमें अन्याय, अत्याचार, व्यसन तथा व्यभिचारके प्रति मन्यु रहता है, सात्विक रोष रहता है, जो अदम्य होता है और कुकर्मोंको सन्मार्गपर लानेके लिये दंड देनेका सामर्थ्य देता है। क्रोधमें मनुष्यका ह्रास होता है। मन्युकी उत्पत्तिही तेजसे है। ओजस्वीमें जो व्यसन और पापके प्रति विरोध होता है वह पापी दुरात्माके तेजको हर लेता है। दैवी प्रकृतिके पुरुष अपने कर्मफलका दूसरोंके उपकारके लिए त्याग करते हैं, अपनी कमाईको दूसरोंकी भलाईके लिए लगाते हैं, वे कभी क्षुद्र दृष्टि नहीं रखते, कभी निन्दा नहीं करते पर सुधारके निमित्त सदा निर्भय होकर नीतियुक्त सत्य कह देते हैं, उनमें सबके प्रति दया होती है, वे तृष्णा नहीं रखते, मृदुता और ऋजुताका सुन्दर मेल उनमें होता है, सत्य और प्रेमका सामंजस्य उनमेंही देखनेको मिलता है, उनसे कभी बुरे कर्म नहीं होते, वे अपने यश और कीर्तिके धनी कभी अपनी मानमर्यादाको कलंकित नहीं होने देते, उनका स्वभाव चंचल नहीं रहता, वे उदार भाव धारण करते हैं और चंचलता उनके चरित्रमें नहीं दिखाई दिया करती, व्यर्थके विवादमें वे नहीं पडा करते, वे तेजस्वी और वर्चस्वी होते हैं। इस प्रकारके मनुष्य सर्व-प्रिय हो जाते हैं और क्रूर मनुष्य उनसे द्रोह करता है, तो वह उनकी अदम्य शक्तिके आगे पराजित और लज्जित होता है। स्वार्थी और क्षुद्र विचारवाले लोग उनसे भय खाते हैं, उनसे द्वेष करनेका ऐसे नीच लोगोंको साहस नहीं होता।

दैवी प्रकृतिके मनुष्योंद्वाराही संसारमें प्रगति और उन्नतिके चिरस्थायी कार्य हुए हैं। दिव्य गुण धारण करनेसे मनुष्य दीन नहीं होता, निराश नहीं होता, सदा प्रफुल्ल-वदन और साहसी बना रहता है। जिस समाजमें दैवी गुणके मनुष्योंकी बहुलता हो वही समाज उन्नत कहा जाता है, वही धार्मिक समाज है। मनुष्यका अपने तथा समाजके प्रति जो कर्तव्य वही धर्म है। कर्तव्य-परायण पुरुषोंका संगठन ही श्रेष्ठ समाज है।

धर्म

जो धारण करता है, जो आधार है, वह धर्म है। धारक शक्ति धर्म है, जिसने सब लोक धारण किये हुए हैं। जिस शक्ति द्वारा सुव्यवस्था तथा क्रम है, वह धर्म है। जिस शक्तिसे अपने आपका धारण होता है, जिससे अपनी स्थिति तथा विकास है, वह अपना धर्म है।

विश्वधर्म वे अटल शाश्वत नियम हैं, जिन्हें ऋत और सत्य कहते हैं। ऋतसे ही जगत्की स्थिति है, ऋतसे ही जगत्की

गति सुव्यवस्थित है, ऋत जगत्का धर्म है। सत्यसे मनुष्यों-का परस्पर व्यवहार ठीक चलता है, उनकी स्थिरता रहती है। सत्य मानवधर्म है।

मनुष्यका धर्म परस्पर हित करना है, जो उसे विकासमें सहायता देता है। मनुष्य अन्य जीवोंसे विलक्षण जिस बातमें है वह है विवेक, इसलिए इस विवेचनासे विवेक मनुष्यका धर्म है। विवेकहीन मनुष्य सत्य अनुष्ठान भी नहीं कर सकता और निजी धर्मसे पतित होता है। धर्म जीवनसार है, जीवनतत्व है, जीवनसर्वस्व है। धर्मही जगत्का आधार है।

वे नियम जिनसे स्थिति निश्चित रहे और विकास निर्विघ्न हो, धर्म कहलाएंगे। इसलिए ऋत और सत्यही मानव तथा विश्वके आधार होनेसे धर्म हैं। ऋत अर्थात् अटल सृष्टिनियम और सत्य अर्थात् व्यावहारिक सत्य येही जगतीभरकी गतिविधिके नियामक होनेसे विश्वधर्म कहे जाने चाहिये। धर्म, ऋत और सत्य तीनों वास्तवमें एकही हैं। ऋत और सत्य जगतीके परम आधार हैं, येही सृष्टिसे लेकर निरंतर सुव्यवस्था स्थिर रख रहे हैं। आरंभमें ऋतसेही परमाणुओंमें गति हुई थी और निरंतर जारी है। विनाश और जीवनका क्रम ऋतद्वारा चल रहा है। ऋतसेही जगतमें जीवनका विकास हो रहा है। मनुष्योंमें सत्याचरण, सत्यव्यवहार ही जीवनके विकासमें परम सहायक हैं, सत्यही मानव धर्म है। सत्य अथवा सद्विवेक अवलंबित जीवनचर्या जो परमात्माकी साक्षीमें आत्मा बुद्धियुक्त होकर करता है, वही मनुष्यका विकास क्रममें समर्थ होती है। विवेक बिना मनुष्य मार्गच्युत हो जाता है, पथ-भ्रष्ट हो जाता है। विवेकही ज्योति है, जिसके सहारे सत्यका अनुष्ठान करके मनुष्य निजधर्म पालन करता है। मनस्वी जिसका मनपर अधिकार है, वही मनुष्य है। मनुष्यकी विशेषता विचार करना, मनन करना है। विवेकसे परख कर उन्नतिका मार्ग निश्चित करके उसका अनुसरण करना धर्माचरण है, ऐसा मनुष्य धर्मशील है।

जो सत्यको धारण करता है, केवल वाणीसे कहताही नहीं, जिसका व्यवहार सच्चा है, वही सदाचारी है। जो सदाचारी है वह धर्मात्मा है क्योंकि सत्यही धर्म है। परस्पर हितकी दृष्टिसे सत्यका आपसमें व्यवहार करना, छल कपट दंभका सर्वथा त्याग करना सत्याचरण है, यही धर्माचरण है।

सत्याचरण विवेकपर निर्भर है। जिसमें शुद्ध विवेक सदा जाग्रत रहता है, वह सदा सद्विचार तथा सत्य आचारही करता है, सदाचारही प्रशस्त कर्म है, वही श्रेष्ठ कर्म है, क्योंकि उससे सबका भला होता है। यज्ञको श्रेष्ठतम कर्म वेदमें कहा है क्योंकि आदर, प्रेम और उदारता, यज्ञके इन तीन अंगोंसेही मानव-समाजकी स्थिति और विकास होता है। यज्ञमें निश्चित सबका परम हित है, सबकी समृद्धि है, वैभव है, ऐश्वर्य है और शोभा है। यज्ञ मानवधर्म है। यज्ञ-कर्मसेही मानव विकास होता रहा है, यज्ञकर्म इसलिए धर्मकर्म है। आज्ञापालन, संगति और दान-भाव अथवा आदर-सन्मान तथा दयाके भाव ही समाजको पुष्ट बनाते हैं, ये वे आचरण हैं जिनसे जीवन सुदृढ और सुन्दर बनता रहता है और परिणामतः सर्वहित होता है। यज्ञमय जीवनमें ही भगवान्की आज्ञाका पालन होता है, इस जीवन-चर्यामें व्यापकता है, संकीर्णता नहीं, इसमें सामंजस्य है, विच्छेद नहीं, इस आचरणमें समन्वय है, मेल है, संगतिकरण है। भगवान् अपनी प्रजामें परस्पर मेलही चाहते हैं, ऐसे आचरणसे भगवान् प्रसन्न होते हैं, इसीलिए धर्माचरण से अभ्युदय तथा सर्वकल्याणकी उपलब्धि कही गई है।

भगवान्की आज्ञापालन उनके अटल नियमोंको समझकर पालन करना है। अन्तर्यामी प्रभु तो हृदयविहारी हैं तथा सर्वव्यापक हैं। जब वे प्रसन्न होते हैं तो भगवत् शक्तिकी प्रेरणा मनुष्यको होती है और वह उस प्रसादको पाकर परम प्रसन्न होता हुआ जीवनको संगीत समान विकसित करता है। आत्मा का प्राण मनुष्यके हृदयमें है, सदाका साथी है, सदा साथ रहेगा, उससे कभी कोई अलग होही नहीं सकता। वह तो मनुष्यको वायु-मंडल अथवा आकाशकी भांति घेरे हुए है और उसकी निरंतर रक्षा कर रहा है। धर्मरूपमें परम प्यारा प्रभु मनुष्य का परम आधार उसका हृदयाधार है। भगवान्को स्वीकार करनेवाला मनुष्य भगवान्की अतुल कृपासे कभी धर्मच्युत नहीं होता। धर्मशील रहना अथवा भगवत् शरणमें नित्य रहना एकही बात है।

जिस आचरणसे बुद्धि निर्मल हो, निरंतर आत्मज्योति प्रकाशित रहे, आत्मतुष्टि हो, चित्त सदा प्रसन्न रहे, आत्मा आनंद अनुभव करे और सदा कर्तव्य पालनमें रुचि हो, पुरुषार्थ करनेमें मन न ऊबे, मनुष्य उन्नत होता हुआ भी निरभिमान हो वैसा आचरण धर्माचरण है, यही आर्यत्व है, यही श्रेष्ठत्व है। ऐसा व्यक्ति किसीसे न तो द्वेष करेगा और न कोई उससे द्वेष करनेका साहस करेगा, न वह किसीको त्रास दिखाएगा और न

स्वयं भयभीत ही होगा, सदा अभय रहकर शुद्ध मनसे कार्य करके तृप्त होता रहेगा। ऐसे व्यक्तिके अन्दर ही न्यायका भाव उदय होता है। साधारण जन ममताके पाशको नहीं काट सकते, वे रागमें फंसे हुए तथा मोहमें डूबते रहते हैं। सत्य और न्याय एकही बात है। दोनों प्रेमपर अवलंबित और सत्य और न्यायपरही प्रेम आश्रित है। इनमें आकर्षण और प्रत्याकर्षण रहता है। जिसका स्वभाव धर्मयुक्त हो गया है, जिससे अधर्म होही नहीं सकता, वह पुरुष कृतकृत्य है।

धर्मशील मनुष्य ही सर्वहित करता है। सर्वहितमें अपना हित तो स्वयं ही हो जाता है, क्योंकि सर्वोन्नतिके भावमें निजी उन्नति संयुक्त है। जो स्वयं उन्नत है, जिसका जीवन उन्नत है, विकसित है, वही सबकी उन्नतिमें अपनी उन्नति समझेगा। साधारण जनकी दृष्टि स्वार्थ अथवा निजी हिततक ही रहती है और यह दृष्टि ही संकोच, तथा कृपणताकी जननी है। धर्मशील पुरुषकी दृष्टि व्यापक होती है, वह सबको तथा अपने आपको ठीक ठीक पहचानता है, इसीलिए सर्वहित करनेमें समर्थ हो जाता है। सर्वोन्नति, सर्वोदय, सर्वहित अथवा विश्वकल्याणके कार्य ही धर्मकार्य हैं। उपकारकी भावनातक मनमें न लाकर जो हितकर साधना की जाती है, उसमें अभिमान नहीं होता और मनुष्यका जीवन सरल रहता है। ऋजु जीवन, सरल जीवनसे विचार शुद्ध होते हैं, बुद्धि निर्मल होती है, धारणाशक्ति विकसित होती और मनुष्य सामर्थ्यवान् हो जाता है, यही धर्मफल है।

विचार शुद्ध हो तो आचरण भी पवित्र होगा। स्वाध्याय, आत्मनिरीक्षण तथा सत्संगसे विचार शुद्ध होते हैं। इसलिए स्वाध्याय तथा आत्मनिरीक्षण और सत्संग ये धर्मके अंग समझने चाहिये। धर्म-पथके पथिकके लिए ये तीनों परम आवश्यक हैं।

अनुभवी ज्ञानवान् पुरुषोंके वचन, उनका शुद्ध जीवन तथा जीवनचर्याके नियम यही मनुष्यका परम कल्याण करनेका सामर्थ्य रखनेसे साक्षात् धर्म हैं। धर्मका मर्म बहुत कठिन है, आदर्शके सहारे धर्म आचरणमें सहायता मिलती है और उद्देश्य अथवा ध्येयमें कठिनाई कम आती है। आदर्श वह जीवन ज्योति है जो कठिन तथा मोहके कारण अंधेरे मार्गमें प्रकाश देती है और आशा बंधाए रखती है।

प्रमाद और आलस्य मनुष्यके दो बडे शत्रु हैं। इनमें अपनी शक्ति कुछ नहीं, ये मनुष्यकी दुर्बलतापर ही पनपते हैं। मनुष्य सजग रहे, सदा अपना तेज और ओज बढाए, वीर्यवान् रहे, शुद्ध सात्त्विक भोजन तथा सात्त्विक ही भावोंमें रहे और नित्य आत्मपरीक्षा करके अपने आपको सावधान रखे तो विवेक सदा सहायक रहेगा और मनुष्य धर्मशील रहता हुआ अबाध उन्नति कर सकेगा।

धर्मशील

जिससे न तो लोगोंको क्लेश होता है और न जो लोगोंसे क्लेश पाता है, जो सदा सन्तुष्ट संयमी तथा दृढ विश्वासी है, जो हर्ष शोक क्रोध और भयसे अलिप्त है, जो किसीसे द्वेष नहीं करता और न किसी अन्यको उससे द्वेष करनेका साहस होता है, जो विजयी होता हुआ क्षमाशील है, जिसमें ममत्व-बुद्धि तथा अभिमान नहीं है, जो कठिनाईमें भी धैर्यवान् है, जिसमें सर्वहितके लिए अर्पण बुद्धि स्थिर रहती है, जो शक्तिमान् होता हुआ नम्र है, जो स्वयं अभय है और दूसरोंको निर्भय करता है, ऐसा मनुष्य धर्मशील है, ऐसे पुरुषका स्वभाव धर्मयुक्त हो चुका है, उसे सदा धर्मकार्य करनेमें ही रुचि रहती है और वह धर्म-कर्ममें ही तत्पर रहता है, उससे अधर्म हो ही नहीं सकता।

धर्मशील मनुष्य सदा सावधान रहता है, वह अपने विवेकको मन्द नहीं होने देता। मनुष्यका विवेकही तो उसका आधार है। मनुष्यका विवेक मन्द हुआ और समझो, उसका आधार दुर्बल हो गया और मनुष्यत्वसे उसकी गिरावट आरंभ हुई। सावधान रहकर वह नित्य चैतन्य और उत्साहपूर्ण रहता है।

वह धर्म कहता और धर्म ही करता है। दृढ निश्चय, पूर्ण विश्वास, अटूट श्रद्धा, ये विजयी जीवनके लिए परम आवश्यक हैं। आत्मविश्वास इन्हींसे विकसित होता है, आत्म-शक्ति बढती है और मनुष्य उन्नत होता है। धर्मशीलकी दृढता ऋत और सत्य भरे आचारमें होती है। जिसका स्वभाव निरंतर ऋत पालनका हो जाता है, उसे भ्रान्ति नहीं होती, वह कर्तव्य अकर्तव्यको जानता है, उसकी बुद्धि ऋतके आश्रित रहती हुई सदा उसकी सहायता करती है। वह सद्विवेकसे तीनों गुणोंके व्यापारोंको पूरी तरह जानकर नित्य सत्व गुणमें स्थिर रहता है। उसकी जीवनचर्या सत्वगुणप्रधान बन जाती है। वह परम पुरुषार्थ करता हुआ सदा प्रसन्न रहता है और प्रसन्नतासे कार्य करनेसे कार्य सुगमतासे संपादन करता है और सुफलता प्राप्त करता है। नित्य प्रसन्न तथा उद्योगी पुरुष सदा उन्नत होता है और अपने चहुं ओर पवित्र वातावरण बनाता है। वातावरण

के पवित्र होनेसे उसे सत्कार्य करनेमें बाधाएं या तो आती ही नहीं अथवा उसकी शक्तिसे छिन्नभिन्न हो जाती हैं।

जो मनुष्य कार्य आरंभ कर देनेपर विघ्नोंके भयसे घबराता नहीं और बराबर अनथक श्रमसे कार्य समाप्तितक उसमें लगा रहता है, वह धर्मकी अनुपम शक्तिका परिचय देता है। जो मनुष्य सत्यकी रक्षाके लिए स्वीकार कर लेनेपर, दूसरेका अपराध क्षमा कर देता है और इस प्रकार एक अपराधीको दुराचारसे हटाकर सदाचारके मार्गपर चला देता है, वह धार्मिक है। जो मननशील मनुष्य इन्द्रियोंको संयमसे शुभ मार्गपर चलाता है, वह विजयी है।

जो चोरी नहीं करता, किसीकी वस्तु बिना आज्ञाके नहीं छूता, उसने अपनी इष्टकी साधना सफल की है। जो मनुष्य पवित्र है और आत्मनिरीक्षण करके नित्य निर्मल बुद्धि और शुद्धाचरण करता है, वह धन्य है। जिस सदाचारी मनुष्यकी इन्द्रियें उसकी बुद्धिके वशमें और बुद्धिका विवेचन उसकी आत्मप्रेरणासे होता है, वही स्वतंत्र है।

जिसका विवेक सदा चैतन्य रहता है, जो सावधान रहकर सद्बुद्धिसे विवेचन करके कार्य करता है, वह सफलता प्राप्त करता है, निराशा उसके निकट नहीं आती। जो पुरुष जगत् विद्यासे दीर्घायु तथा ऐश्वर्य प्राप्त करके परमार्थ विद्यासे आत्मतृप्ति लाभ करता है, वह अमृतपदको पाता है और सत्यके तत्वको साक्षात् करके देवत्वको प्राप्त करता है और संसारमें यशका भागी होता है। देव पुरुष देना जानते हैं, वे कृपण नहीं होते, वे लोभ नहीं करते।

जो मनुष्य विजयी है, जिसका अपने मनपर अधिकार है, वह कभी क्रोधी नहीं होता। वह उत्साहभरा हुआ जो कभी रोष प्रकट करता है तो पापी पामर कायर भीरु लोग कांपने लगते हैं और वह धर्ममर्यादाके चलानेमें सहायक होता है। ऐसे पुरुषका स्वभावही धर्ममय हो जाता है, उसे लोग धर्मात्मा कहते हैं। ऐसे नरश्रेष्ठकी जीवन-चर्या नियमयुक्त हुआ करती है, उसे कभी समयकी कमी नहीं होती। वह अपने सभी कर्तव्य हंस खेलकर परम शान्ति तथा सुखसे कर लेता है और सदा प्रसन्नवदन दिखाई देता है

धर्म सदा धर्मावलंबीकी रक्षा करता है। धर्मको मनुष्य सदा करे, धर्मका त्याग कभी न करे। धर्ममें कभी प्रमाद और आलस्य न करे। धर्मकार्यको सदा लगनसे, उल्लाससे करे और सबके कल्याणकी शुभ कामना करता रहे, तो जीवन अवश्य उन्नत होता है।

स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा) की हिंदी पुस्तकें।

१ ऋग्वेद-संहिता	मू. ६)	डा.व्य. १।)
२ यजुर्वेद-संहिता	२॥)	॥)
३ सामवेद "	३॥)	।॥)
४ अथर्ववेद "	६)	१)
५ काण्व-संहिता	४)	॥=)
६ मैत्रायणी सं०	६)	१)
७ काठक सं०	६)	१)
८ तैत्तिरीय सं०	६)	१)
९ दैवत-संहिता १ म भाग	६)	१॥)
१० " " २ य भाग	६)	१॥)
ऋग्वेदका सुबोध भाष्य		
१ मधुच्छन्दा ऋषिदर्शन	१)	।=)
२ मेधातिथि "	२)	॥=)
मरुद्देवता-(पदपाठ, अन्वय, अर्थ)		
१ मंत्र-संग्रह, समन्वय, मंत्रसूची, तथा हिंदी अनुवाद	मू. ७)	१॥)
२ मंत्र-संग्रह तथा हिंदी अनुवाद	५)	१)
३ हिंदी अनुवाद	४)	॥।)
४ मंत्रसमन्वय तथा मंत्रसूची	२)	॥)
संपूर्ण महाभारत	७५)	
महाभारतसमालोचना (१-२)	१॥)	॥)
संपूर्ण वाल्मीकि रामायण	३०)	६।)
भगवद्गीता (पुरुषार्थबोधिनी)	१०)	१॥)
गीता-समन्वय	२)	॥)
" श्लोकार्धसूची	॥=)	=)
गीताका राजकीय तत्त्वालोचन	१)	॥)
Bhagavad Gita	Rs. 15/-	
अथर्ववेदका सुबोध भाष्य।	२४)	४॥)
संस्कृतपाठमाला।	७॥)	॥=)
वै. यज्ञसंस्था भाग १	१)	।)
छूत और अछूत (१-२ भाग)	२)	॥)
योगसाधनमाला।		
१ योगके आसन। (सचित्र)	२॥)	।=)
२ ब्रह्मचर्य।	१॥)	।-)
३ योगसाधनकी तैयारी।	१)	।-)
४ सूर्यभेदन-व्यायाम	॥।)	=)

देवतापरिचय-ग्रंथमाला		
१ रुद्रदेवतापरिचय	॥)	=)
२ ऋग्वेदमें रुद्रदेवता	॥=)	=)
३ देवताविचार	।)	-)
४ अग्निविद्या	२)	॥)
बालकधर्मशिक्षा		
१ भाग १ =) तथा भाग २ ≡)		=)
२ वैदिक पाठमाला प्रथम पुस्तक	।)	-)
आगमनिबंधमाला।		
१ वैदिक राज्यपद्धति	।=)	-)
२ मानवी आयुष्य	।)	-)
३ वैदिक सभ्यता	।॥)	≡)
४ वैदिक स्वराज्यकी महिमा	॥=)	≡)
५ वैदिक सर्पविद्या	॥=)	≡)
६ शिवसंकल्पका विजय	॥=)	≡)
७ वेदमें चर्खा	॥=)	=)
८ तर्कसे वेदका अर्थ	॥=)	≡)
९ वेदमें रोगजंतुशास्त्र	।)	-)
१० वेदमें लोहेके कारखाने	॥)	-)
११ वेदमें कृषिविद्या	।)	-)
१२ ब्रह्मचर्यका विघ्न	=)	-)
१३ इंद्रशक्तिका विकास	॥।)	=)
उपनिषद्-माला।		
१ ईशोपनिषद् १॥) २ केन उपनिषद् १॥)		।-)
१ वेदपरिचय- (परीक्षाकी पाठविधि)		
१ भाग १ ला	१॥)	॥)
२ " २ रा (समाप्त)	१॥)	॥)
३ " ३ रा	१॥)	॥)
२ वेदप्रवेश (परीक्षाकी पाठविधि)	५)	।॥)
३ गीता-लेखमाला ५ भाग	६)	१॥)
४ सामान्यी भगवद्गीता १ भाग	१)	।=)
५ सूर्य-नमस्कार	।॥)	≡)
६ ऋग्वेद-दीपिका (पं. जयदेव शर्मा)	४)	॥)
शतपथबोधामृत	।=)	-)
अक्षरविज्ञान	१)	।=)
यजुर्वेद अ. ३६ शांतिका उपाय	॥।)	≡)

अयोध्याकाण्डका निरीक्षण

(३)

गुहेन सार्धं तत्रैव स्थितोऽस्मि दिवसान् बहून् ।
आशया यदि मां रामः पुनः शब्दापयेदिति ३
(अयोध्या. स. ५९)

'गुहके साथ मैं वहीं गंगातीरपर इस इच्छासे रहा कि राम वापस आवेंगे और मुझे कहेंगे कि 'वापस चलो,' तो मैं उनको वापस ले आऊं, इस इच्छासे मैं बहुत दिन वहीं ठहरा, पर वह नहीं लौट आये।' 'बहुत दिन'के माने तीन दिन,

१ पहिले दिन श्रीरामचन्द्रजी गंगा किनारे पहुंचे, दूसरे दिन पार हुए,

२ दूसरे दिन वे चित्रकूटपर पहुंचे,

३ तिसरे दिन गुहके दूतोंने वे चित्रकूटपर पहुंचनेकी खबर लायी,

रामचन्द्रजी जिस दिन गंगापार हुए उससे पूर्वदिन शामको वे गंगातटपर पहुंचे थे। इससे पता चलता है कि सारथी गंगातटपर चार दिन इंतजार करता रहा। सूतने (बहून् दिवसान्) बहुत दिन मैं वहां रहा ऐसा कहा है। श्रीरामभद्रके विरहके कारण चार दिनही उसको बहुत दिन करके प्रतीत हुए। ऐसा होना दुःखके कारण अत्यंत स्वाभाविकही है।

रामचन्द्रजी वनमें जाकर पांच दिन हुए

वनवासाय रामस्य पञ्चरात्रोऽत्र गण्यते।
यः शोकहतहर्षायाः पञ्चवर्षोपमो मम १७

'राम वनवासमें जाकर आज पांच रात्रियां हो गयीं। ये पांच रात्रियाँ दुःखके कारण पांच वर्षोंके समान प्रतीत हुईं,' ऐसा कौसल्या कहती है। दुःखसे ऐसाही होता है।

छठाँ दिन भी इसी तरह चला गया। सूर्यका अस्त हुआ और छठी रात्रि प्रारंभ हुई। तब दशरथ राजाको शोकसे थोडीसी निद्रा या बेहोशीसी आगयी। (अयोध्या. ६३।१८–२०)

स राजा रजनीं षष्ठीं रामे प्रव्राजिते वनम्।
अर्धरात्रे दशरथः सोऽस्मरद् दुष्कृतं कृतम् ४
(अयोध्या. स. ६३)

इस छठी रात्रिके समय मध्यरात्रिमें दशरथको उस श्रावणवधके अपनेही दुष्कृत्यका स्मरण हुआ और वह वृत्तांत उसने कौसल्यासे कहा।

दो दिनका प्रवास

श्रीरामचन्द्रको गंगानदीतक पहुंचाकर रथको वापस अयोध्यामें आनेके लिये दो दिन लगे, यह मार्ग दोही दिनका है।

ततः सायाह्नसमये द्वितीयेऽहनि सारथिः।
अयोध्यां समनुप्राप्य निरानन्दां ददर्श ह ५
(अयो. स. ५७)

'दूसरे दिन सायंकालमें सुमंत्र रथ लेकर आनन्दरहित अयोध्यामें आ पहुंचा।' छत्तीस घण्टे उसको आनेके लिये लगे, ऐसा इससे स्पष्ट होता है। यह मार्ग अयोध्यासे अधिकसे अधिक ५० या ६० मील होगा।

रामकी स्त्रीवधके लिये घृणा

अवध्याः सर्वभूतानां प्रमदाः क्षम्यतामिति ११
हन्यामहं इमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम्।
यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् २२
इमामपि हतां कुब्जां यदि जानाति राघवः।
त्वां च मां चैव धर्मात्मा नाभिभाषिष्यते ध्रुवम् २३
(अयोध्या. स. ७८)

भरतने शत्रुघ्नसे कहा– 'स्त्रियोंका वध करना सर्वथा निषिद्ध है। धर्मात्मा राम यदि मुझे मातृघातकी कहकर दोष न देगा, तो मैं इस दुष्ट आचरणवाली कैकेयीका वध करूंगा। यदि मैंने उस कुब्जा मंथराका वध किया तो वह धर्मात्मा राम मुझसे भाषण भी नहीं करेगा।'

इस लिये मैं इनका यहां वध नहीं करता, नहीं तो मेरा जी तो चाहता है कि मैं इनका वध करूं।

भरतने शत्रुघ्नसे कहा कि इस कारण तू इसका वध न कर। श्रीरामचन्द्रका भय भरत और शत्रुघ्न मानते थे। श्रीरामचन्द्रका आदर्श बर्ताव ऐसाही उत्तम था।

सीता जेवर पहनती थी

नूपुरोत्कृष्टलीलेव खेलं गच्छति भामिनी।
इदानीमपि वैदेही तद्रागान्यस्तभूषणा १९
(अयोध्या. स. ६०)

'नूपुरोंकी आवाजसे सीतादेवीके चलनेमें अधिक लालित्य प्रतीत होता था। सीता जेवरोंके धारण करनेकी इच्छा करके वनमेंभी वह अपने शरीरपर जेवर धारण करती थी।'

स्त्रियां जेवर पहनना सदा पसंद करती हैं, यह बात यहां कविने बडे लालित्यके साथ बतायी है। सीता जेवर पहनती थी, ऐसा कहनेसे वह वनवाससे उदास नहीं हुई थी, ऐसा यहां कविने सूचित किया है।

मुझे स्मरण नहीं

'मुझे स्मरण नहीं' ऐसा सूतने सीताका संदेश कहनेके समय कहा—

कैकेयीसंश्रितं जल्पं नेदानीं प्रतिभाति माम् १४
(अयोध्या. स. ६०)

'कैकेयीके संबंधमें सीताने क्या कहा, सो मुझे अब याद नहीं है।' इस संबंधमें कविका कथन ऐसा है—

ध्वंसयित्वा तु तद्वाक्यं प्रमादात् पर्युपस्थितम्।
ह्लादनं वचनं सूतो देव्या मधुरमब्रवीत् १५
(अयोध्या. स. ६०)

कैकेयीके संबंधमें सीता देवीने जो भाषण किया था, उसका स्मरण सूतको अच्छी तरह था, कहनेके लिये वह भाषण उसकी जिह्वापर आया भी था। पर वह बडा अप्रिय था, इसलिये सूतने कहा नहीं और जिससे आनंद प्रतीत होगा, वही भाषण उसने यहां कहा। चतुर दूतके येही लक्षण हैं।

स्त्रियोंके साथ भ्रमण

स्त्रियोंको साथ लेकर एक कोसतक (दो तीन मील) लोक घूमनेके लिये जाते थे। ऐसा उस समय रिवाज था, ऐसा प्रतीत होता है–

रामं वा लक्ष्मणं वापि दृष्ट्वा जानाति जानकी।
अयोध्याक्रोशमात्रे तु विहारमिव संश्रिता ११
(अयोध्या. स. ६०)

सीतादेवी रामचन्द्रको वनके संबंधमें मालुमात पूछती है और अयोध्यासे एक कोस फासलेतक भ्रमणके लिये गयी है, ऐसे भावसे वह आनन्दसे रहती है, ऐसा सूतने कहा।

इस कथनमें नगरसे एक कोस दूरीतक स्त्रीके साथ भ्रमण करनेका उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि ऐसा रिवाज उस समय था। कुमारिकाएं उद्यानोंमें खेलकूदके लिये जाती ही थीं। स्त्रियां भी जाती थीं। आज यह रिवाज रहा नहीं है।

यज्ञकर्ममें रामकी प्रवीणता

यजस्व, कुशलो ह्यसि २९ (अयोध्या. स. ५६)

'रामचन्द्रजी याज्ञकर्ममें कुशल थे।' पितृमेधादि कार्य वे स्वयं कर सकते थे। इतनी कुशलता और प्रवीणता वैदिक कर्मोंमें श्रीरामचन्द्रजीकी थी। पुरोहितकी सहायताके विनाही वे सब धर्म-कर्म, यज्ञयाग, होमहवन किया करते थे। सब धर्म-कर्म किस तरह करने चाहिये, उनके विधिनिषेध क्या हैं, संक्षेपसे कर्म किस तरह किये जाते हैं, यह सब उनको ज्ञात था।

इस समयके क्षत्रियोंको यह सब पढाया जाता था, रामचन्द्रजीने पितृश्राद्ध स्वयं किया था। इस विषयमें देखिये–

पितृश्राद्ध

आनयेङ्गुदिपिण्याकं चीरमाहर चोत्तरम्।
जलक्रियार्थं तातस्य गमिष्यामि महात्मनः २०
सीता पुरस्ताद्व्रजतु त्वमेनामभितो व्रज।
अहं पश्चाद्गमिष्यामि गतिर्ह्येषा सुदारुणा २१
(अयोध्या. स. १०४)

'सूखे हुए इंगुदी फलोंका पिण्ड यहां ले आ। वह उत्तम वल्कल भी ले आ। मैं पिताकी उदकक्रिया करता हूं। सीतादेवी पहिले चले, लक्ष्मण उसके पीछेसे जावे और मैं सबसे पीछेसे जाऊंगा। इस कार्यके लिये ऐसा ही जाना चाहिये।'

'सर्वे कनिष्ठप्रथमा इतरे तु स्त्रियोऽग्रतः'

'स्त्रियाँ सबसे प्रथम आवें, छोटी ऊमरवाले उसके बाद चले, अन्य लोग आयुकी अनुसार पीछेसे आवें।' इस शास्त्रवचनके अनुसार रामचन्द्रजीने किया। यहां इंगुदी फलोंके आटेका पिण्ड दिया है। यहां मांसका उल्लेख नहीं है। श्रीरामचन्द्रकी पर्णशालामें यदि मांस होता तो वह इस समय दिया होता। इससे प्रतीत होता है कि मांस-वचन बहुधा प्रक्षिप्त होंगे।

श्रीरामचन्द्रजीके श्राद्धविधिके समाप्त करनेके पश्चात् कौसल्याने वह पिण्ड इङ्गुदीके आटेका है, ऐसा देखा और उसको बडा ही दुःख हुआ, उसने तब कहा— 'देखो भाई, देखो! इतने बडे सम्राट्के लिये यह इंगुदीके आटेका पिंड दिया जाता है! क्या सम्राट्के लिये यह योग्य भोजन है? वैभवसंपन्न रामचन्द्रपर अपने वैभवसंपन्न पिताके लिये ऐसा इंगुदीपिण्ड अर्पण करनेका दारुण प्रसंग आया है, इससे अधिक दुःखदायी तो और क्या हो सकता है?' (अयोध्या. १०५।८-१७)

१३ दिनका और्ध्वदेहिक

और्ध्वदेहिक तेरह दिनतक चलता था। चौदहवें दिन मनुष्य इससे निवृत्त होकर अपने दैनिक कार्यमें लगता था—

ततः प्रभातसमये दिवसेऽथ चतुर्दशे।
समेत्य राजकर्तारो भरतं वाक्यं अब्रुवन् १
(अयोध्या. स. ७९)

चौदहवें दिन सबेरे राज्यके सब ओहदेदार आगये और सबने भरतसे कहा कि 'अब तुम राज्यका पालन करो।' उसपर भरतने कहा कि— 'बडे भाईकाही अधिकार राज्य-पर बैठनेका है। इसलिये मैं वनमें जाऊंगा और श्रीराम-चन्द्रको वापस ले आऊंगा। सब मिलकर उनकोही राज-गद्दीपर बिठलावेंगे।' (अयोध्या. ७९।१-१३)

भरतका यह भाषण सुनकर सबको आनन्द हुआ। और उन्होंने कहा— 'जिस कारण बडे भाईको ही राज्य देनेकी तुम्हारी इच्छा है, उस कारण तुम्हें कमलवासिनी लक्ष्मी प्राप्त होवे।' इस तरह सबने भरतको आशीर्वाद दिया और भरतका यह भाषण सुनकर सबको अत्यंत आनन्द भी हुआ। पश्चात् रामचन्द्रजीको वापस लानेके लिये वनमें जानेकी आज्ञा भरतने सबको दी। तब सब लोग वनगमनकी तैयारी करने लगे।

वनभोजन

नीवार नामक धान्य है, जो वनमें स्वयं उगता है। यह तृणधान्य है। यही वनवासियोंका भोजन है—

भुक्त्वाशनं विशालाक्षी सूपदंशान्वितं शुभम्।
वन्यं नैवारमाहारं कथं सीतोपभोक्ष्यते ५
(अयोध्या. स. ६१)

'जायकेदार चटनियाँ और स्वादु पदार्थ खानेका अभ्यास सीतादेवीको अयोध्यामें था, वही सीता अब नीवारका भोजन किस तरह करती होगी?'

नीवारका आटा, सींगाडोंका आटा, इंगुदीके फलोंका आटा, यह अन्न शुष्क, निःसार और रसहीन है। यही वनमें मिलेगा। यह सीता कैसा खायेगी, ऐसा कहकर शोक हो रहा है।

मांसभक्षण

इस समय मांसभक्षण किया जाता था या नहीं, इसका विचार करनेके समय निम्नलिखित वचन देखने योग्य हैं—

ऐणेयं मांसं आहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम् ११
कर्तव्यं वास्तुशमनं सौमित्रे चिरजीविभिः।
मृगं हत्वाऽऽनय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण २३
कर्तव्यः शास्त्रदृष्टो हि विधिर्धर्ममनुस्मरन्।
ऐणेयं श्रपयस्वैतच्छालां यक्ष्यामहे वयम् २५
त्वर सौम्य मुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो ह्ययम्।
स लक्ष्मणः कृष्णमृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान्।
अथ चिक्षेप सौमित्रिः समिद्धे जातवेदसि २६
तत्तु पक्वं समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम् २७
लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रं अथ राघवमब्रवीत्।
अयं सर्वः समस्ताङ्गः श्रितः कृष्णमृगो मया २८
देवता देवसंकाश यजस्व कुशलो ह्यसि।
रामः स्नात्वा तु नियतो गुणवाञ्जपकोविदः २९
संग्रहेणाऽकरोत्सर्वान्मन्त्रान् सत्रावसानिकान्।
इष्ट्वा देवगणान् सर्वान् विवेशावसथं शुचिः ३०
वैश्वदेवबलिं कृत्वा रौद्रं वैष्णवमेव च।
वास्तुसंशमनीयानि मंगलानि प्रवर्तयन् ३१
जपं च न्यायतः कृत्वा स्नात्वा नद्यां यथाविधि।
पापसंशमनं रामश्चकार बलिमुत्तमम् ३२

वेदिस्थलविधानानि चैत्यान्यायतनानि च ॥
आश्रमस्यानुरूपाणि स्थापयामास राघवः ३३
(अयोध्या. स. ५६)

इसका आशय यह है– श्रीरामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा कि 'हे लक्ष्मण ! हरिनका मांस ले आ, हम वास्तुशान्ति करेंगे। दीर्घकालतक घरमें रहनेवालोंको उचित है कि वे वास्तुशान्ति करें। मृगको मारकर शीघ्र ले आ। शास्त्रके अनुसार और विधिके अनुसार वास्तुशान्ति करना योग्य है। हरिनका मांस पकाकर तैयार कर, हम अब इस शालाकी शान्ति करेंगे। हे लक्ष्मण ! तू त्वरा कर, यह शुभ दिवस है। लक्ष्मणने कृष्ण मृगको जलती आगमें डाल दिया। पश्चात् वह पककर तैयार हुआ, तब रक्तस्राव बंद हुआ, यह देखकर उसने श्रीरामचन्द्रसे वैसा कहा। अब देवताओंका यजन कर, तुम इस कार्यमें कुशल हो, ऐसा कहा।

श्रीरामचन्द्रजीने स्नान किया, जप किया, पश्चात् संक्षेपसे वास्तुशान्तिका संस्कार किया। सब देवताओंके उद्देश्यसे हविर्भाग दिया और पवित्रतापूर्वक उसने उस घरमें प्रवेश किया।

बलि, वैश्वदेव, रुद्रबलि और वैष्णव बलि करके उसने वास्तुशान्ति की, जप किया, नदीमें फिर स्नान किया। पापके नाशके लिये बलि दिया। वेदिस्थान, चैत्यस्थान, देवालय आदिके उद्देश्यसे तथा आश्रमोंके उद्देश्यसे उन्होंने बलि दिये।'

इसमें मांसका उल्लेख है। पर यदि पाठक इस अवतरणका विशेष सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करेंगे तो उनको स्पष्ट दीखेगा कि इस स्थानपर निष्कारण पुनरुक्ति हुई है। श्लोक २२, २३ तथा २५ इनमें तीन स्थानोंपर मृगमांसका उल्लेख है। और यह पुनरुक्तदोष स्पष्ट है। देखो–

ऐणेयं मांसं आहृत्य शालां यक्ष्यामहे वयम् २२
ऐणेयं श्रपयस्वैतत् शालां यक्ष्यामहे वयम् २५
मृगं हत्वाऽऽनय क्षिप्रं २३

यह पुनरुक्ति वाल्मीकिकी है, ऐसा दीखता नहीं है, क्योंकि यह निरर्थक पुनरुक्ति है। स्नानका उल्लेख श्लोक २९ और ३२ में दो बार है जो प्रसंगहीन है। इसके अतिरिक्त लक्ष्मणने बनायी पर्णकुटि वनमें थी, वहां चैत्य, देवालय आदि स्थान थेही नहीं, इसलिये जो स्थान आस पास नहीं हैं, उनके उद्देश्यसे बलि दिये, यह कथन प्रसंगहीन है।

श्लोक २० के पश्चात् ३४ वां श्लोक होगा ऐसा स्पष्ट दीखता है। अर्थात् बीचका मांस-प्रकरण स्पष्टही प्रक्षिप्त दीखता है।

मांस

शुद्धबाणहतांस्तत्र मेध्यान् कृष्णमृगान्दश।
राशीकृतान् शुष्यमाणानन्यान्कांश्चन कांश्चन १४
क्रियतां बलयश्चेति रामः सीतामथाब्रवीत्।
तयोरुपददद्भार्या मधु मांसं च तद् भृशम् १६
(अयोध्या. स. ९६)

'शुद्ध अर्थात् विष न लगाये बाणसे दस कृष्ण मृगोंको मारकर उसका एक ढेर लगाया और अन्य भी कुछ मृग रामचन्द्रने वहां देखे। उनको देखकर रामको आनंद हुआ। 'अब बलि देदो' ऐसा उसने सीतादेवीसे कहा। प्रथम भूतबलि करके पश्चात् मधु और मांस सीतादेवीने उनको यथेच्छ दिया।'

यह संपूर्ण अध्याय प्रक्षिप्त है, ऐसा सब टीकाकारोंका मत है। इस अध्यायका आगे पीछे कोई संबंध भी नहीं दीखता। मधु नामक मद्य तैयार करनेके लिये जितने दिन लगते हैं, उतने दिन श्रीरामचन्द्रजीका निवास भी वहां नहीं हुआ था। ऐसा होते हुए यहां लिखा है कि सीतादेवीने मधुमांस यथेच्छ उनको परोस दिया। यह वर्णन उक्त कारणसे प्रक्षिप्त है। कोई भी टीकाकार इस अध्यायको यहां नहीं मानता और सब इसको प्रक्षिप्त मानते हैं। कई पुस्तकोंमें यह है और कईयोंमें यह नहीं है। इसलिये यह प्रक्षिप्त है।

भरद्वाज मुनिने भरतके सब सैनिकोंको भोजन दिया

सेनायास्तु तवैवास्याः कर्तुमिच्छामि भोजनम् ४
(अयोध्या. स. ९१)

भरद्वाज ऋषिने कहा कि—'हे भरत! तुम्हारे सब सैनिकोंको मैं भोजन देना चाहता हूं। उसका स्वीकार करो।' भरतने प्रथम नम्रतापूर्वक कहा कि 'इससे आश्रमवासियोंको बडे कष्ट होंगे,' पर ऋषिका बहुत आग्रह देख कर

वह उस निमंत्रणको स्वीकार करनेके लिये तैयार हुआ। इस भोजनका वर्णन बडा संदेह करने योग्य है।

इस भोजनमें शराबियोंके लिये मद्य तैयार था, पायस पीनेवालोंके लिये पायस था, मांस खानेवालोंके लिये मांस था, एक एकके लिये सात सात स्त्रियां शरीरपर तेल लगानेके लिये थीं। (अयोध्या. ९१।५१-५४) यह वर्णन आश्रमजीवनके साथ सजनेवाला नहीं है। यहां बकरों और सूअरोंके भी मांस परोसे थे। (६७) मिट्टीके खपरपर भूने मांस भी थे। (७०) ये सब वर्णन मुनिभोजनके साथ तथा आश्रमजीवनके साथ मिलनेजुलनेवाले नहीं हैं।

लक्ष्मणका झोंपडा बनाना

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सौमित्रिर्विविधान्द्रुमान्।
आजहार ततश्चक्रे पर्णशालामरिंदमः २०
तां निष्ठितां बद्धकटां दृष्ट्वा रामः सुदर्शनाम्।

(अयोध्या. स. ५६)

'रामचन्द्रकी आज्ञा सुनकर लक्ष्मणने अनेक वृक्ष तोडकर लाये और उनकी एक उत्तम पर्णशाला बनायी। वह उत्तम रीतिसे बनायी, सजायी थी, अन्दर जलन न हो इसलिये उसपर बांसका अच्छा आच्छादन किया था। यह देखनेमें बडी सुंदर दीखती थी। वह देखनेमें सुहानी, रहनेके लिये सुखदायी तथा शीतोष्णका कष्ट दूर करनेवाली थी।'

यहां लक्ष्मणने दूसरोंकी सहायता ली, ऐसा नहीं कहा है। इसलिये अकेले राजपुत्रनेही यह बनायी, यह सिद्ध है। कमसे कम तीन कमरे उसमें होंगे ही। श्रीरामचन्द्र और सीतादेवीके लिये एक कमरा, लक्ष्मणके लिये पृथक् कमरा तो अवश्यही चाहिये। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय राजपुत्रोंको झोंपडा बनानेका और उसमें होनेवाले कष्ट सहन करनेकी शिक्षा भी मिलती थी। गुरुकुलमें अन्य अध्ययनके साथ यह भी पढाया जाता था, ऐसा दीखता है। नहीं तो राजपुत्रको एकदम विना अभ्यास झोंपडा बनाना कठीन ही प्रतीत होता है।

चित्रकूट पर्वत

चित्रकूटमिमं पश्य प्रवृद्धशिखरं गिरिम् १०
समभूमितले रम्ये द्रुमैर्बहुभिरावृते।
पुण्ये रंस्यामहे तात चित्रकूटस्य कानने ११
बहुमूलफलं रम्यं संपन्नसरसोदकम् १२
मनोज्ञोऽयं गिरिः सौम्य नानाद्रुमलतायुतः।
बहुमूलफलो रम्यः स्वाजीवः प्रतिभाति मे १४
मुनयश्च महात्मानो वसन्त्यस्मिन् शिलोच्चये।

(अयोध्या. स. ५६)

'इस चित्रकूट पर्वतपर ये बडे ऊंचे और रमणीय शिखर हैं। यहां नाना प्रकारके रमणीय वृक्ष हैं। इस समतल, पवित्र तथा आह्लादकारी स्थानपर हम आनंदसे रहेंगे। यहां अनेक पक्षियोंके समूह रहते हैं। यहां कंद मूल और फल भी विपुल हैं। नाना प्रकारकी लता-वल्लियोंसे यह शोभता है। यहां हम उत्तम रीतिसे आजीविका कर सकते हैं। यहांका जल भी उत्तम है और यहां ऋषिमुनि भी बहुत रहते हैं। इसलिये यह पर्वत उत्तम है।'

यहां कन्दमूल फल उत्तम हैं, जल उत्तम है, रहनेके लिये उत्तम स्थान है, धर्मचर्चाके लिये यहां तपस्वी बहुत रहते हैं। इसलिये यहां रहनेसे हमें सुख होगा, यह श्रीरामचन्द्रजीके कहनेका तात्पर्य है।

पिशाचबाधा

पिशाच-बाधा होनेके समान जानकी वहां थी, ऐसा सूतका कथन है—

जानकी तु महाराज निःश्वसन्ती तपस्विनी।
भूतोपहतचित्तेव विष्ठिता विस्मृता स्थिता १४

(अयोध्या. स. ५८)

'सीता तो पिशाचबाधा होनेके समान वेगसे श्वास लेती हुई वहां खडी थी, कुछ भी स्मरण नहीं ऐसी डरी हुई अवस्थामें वहां वह खडी थी।'

यहां 'भूत-उप-हत-चित्ता' यह पद है, इससे ऐसा पता चलता है कि उस समय मनुष्योंको भूतबाधा होती है, ऐसा लोगोंका विश्वास था। जब भूतबाधा होती है, उस समय जोरोंसे श्वासोच्छ्वास होता है, आगेपीछे का कुछ भी स्मरण नहीं रहता। मनुष्य सुस्तसा होकर अचेत गिर पडता है। इन लक्षणोंसे भूतबाधापर विश्वास था,

ऐसा प्रतीत होता है।

तातो भूतोपसृष्टेव वेपमाना पुनः पुनः ।
धरण्यां गतसत्त्वेव कौसल्या सुतमब्रवीत् १
(अयोध्या. स. ६०)

'पिशाचबाधा होनेके समान कौसल्या कांपने लगी।' यहां भी पिशाचबाधा होनेका उल्लेख है। यहां कहा है कि पिशाचबाधा होनेपर शरीर कांपने लगता है।

मुहूर्त

त्वर सौम्य मुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो ह्ययम् २६
(अयोध्या. स. ५६)

ध्रुव मुहूर्त और ध्रुव दिवसका उल्लेख यहां है। चल मुहूर्त और चलदिन गृहप्रवेशके लिये योग्य नहीं है। चल मुहूर्तपर गृहप्रवेश किया जाय तो वह गृहप्रवेशकर्ता उस घरमें बहुत दिनतक नहीं रहता। ध्रुव मुहूर्तपर तथा ध्रुव दिनमें गृहप्रवेश करना योग्य है, जिससे उस घरमें सुखसे दीर्घ कालतक वह मनुष्य रह सकता है। यह कल्पना इस समय प्रचलित थी, ऐसा यहां पता लगता है।

कुंकुमतिलक

स्त्रियां अपने सिरपर कुंकुमतिलक लगाती थीं, ऐसा पता लगता है। देखो—

'इस वनमें एक बडा बंदर सीतादेवीने देखा। तब वह डर गयी और उसने रामको डरसे पकड लिया, तब रामने उस वानरको भय बताकर भगा दिया। इस गडबडीमें—

मनःशिलायास्तिलकः सीतायाः सोऽथ वक्षसि।
समदृश्यत संक्रान्तो रामस्य विपुलौजसः १४
(अयोध्या. सर्ग ९६)

'सीताके सिरपर लगाया मनःशिलाका लाल तिलक रामचन्द्रकी छातीपर लगा, जब सीताने रामको आलिंगन दिया' उसे देखकर सीता हंसने लगी।

इससे स्त्रियां कभी कभी सुंदरता बढानेके लिये सिरपर लाल तिलक लगाती थीं, ऐसा प्रतीत होता है। नहीं तो सीतादेवीके सिरपर तिलक आता ही नहीं। यह प्रतिदिन सौभाग्य-चिह्न करके लगाती नहीं होंगी। प्रतिदिन लगानेका वचन अभीतक मिला नहीं। पुरुष अपने शरीरपर रक्तचंदन लगाते थे। स्त्रियां कुंकुम अथवा दूसरा कुछ लगाती थीं या नहीं, इस विषयमें अधिक खोज होनी चाहिये।

क्षत्रियोंको प्रायोपवेशन करनेका अधिकार नहीं है

किं मां भरत कुर्वाणं तात प्रत्युपवेक्ष्यसे १६
ब्राह्मणो ह्येकपार्श्वेन नरान् रोद्धुमिहार्हति।
न तु मूर्धाभिषिक्तानां विधिः प्रत्युपवेशने १७
(अयोध्या. सर्ग ११२)

रामचन्द्रजी बोले— 'हे भरत! मैंने कौनसा अपराध किया इसलिये तुम यहां इस तरह प्रायोपवेशन करके मरना चाहते हैं? इसका अधिकार केवल ब्राह्मणोंको है। क्षत्रियोंको प्रायोपवेशनका अधिकार नहीं है।' इसलिये क्षत्रिय प्रायोपवेशन न करें।

भरतके साथ कुत्ते

केकय देशसे अपने मातामहका आशीर्वाद लेकर भरत चला, उसके साथ भेंटके रूपमें जो वस्तुएं दीं थीं, वे ये हैं—

तस्मै हस्त्युत्तमांश्चित्रान् कम्बलानजिनानि च।
सत्कृत्य केकयो राजा भरताय ददौ धनम् १९
अन्तःपुरेऽति संवृद्धान् व्याघ्रवीर्यबलोपमान्।
दंष्ट्रायुक्तान् महाकायाञ्छुनश्चोपायनं ददौ २०
रुक्मनिष्कसहस्रे द्वे षोडशाश्वशतानि च।
(अयोध्या. सर्ग ७०)

'केकय राजाने भरतके साथ उत्तम हाथी, उत्तम ऊनी वस्त्र, सिंह व्याघ्रके चर्म, अन्तःपुरमें बढाये गये व्याघ्रके समान बलवान् कुत्ते, सोनेकी दो सहस्र मुद्रायें, सोलह सौ घोडे इतना नजराना भरतके साथ भेज दिया।'

इसमें भयानक कुत्ते और ऊनी वस्त्र ये सीमाप्रांतकी बहुमोल चीजें हैं। मण्डलचक्रवाले रथ भी थे। (२९) चार चक्रवाले रथोंको घुमानेके लिये मण्डलचक्र बीचमें लगे होते हैं। खच्चर और ऊंट भी इस देशकी विशेषता है।

सेनाकी शिक्षा

पूर्वं त्वमुत्थाय सुमन्त्र मण्डलं बलस्य योगाय बलप्रधानान्। (अयोध्याकाण्ड, सर्ग ९२।१०)

'हे सुमंत्र ! तू शीघ्र चल और सेनाधिकारियोंसे कह दे कि सब सेनाको उत्तम सुव्यवस्थामें खडे करो।' यहां 'बलस्य योगः' अर्थात् 'सेनाको संयुक्त करके ठीक पंक्तिमें खडा करना'. ऐसा लिखा है जो सैनिकोंकी व्यवस्थाका द्योतक है।

जाबालीका नास्तिक मत और उसका खंडन

अयोध्या ११०-१११ इन दो अध्यायोंमें जाबाली ऋषि ने कुछ नास्तिक जैसा प्रतिपादन किया था। इसका खण्डन स्वयं रामचन्द्रने किया है। यह सब विषय इन अध्यायोंमें देखने योग्य है। इससे स्पष्ट होता है कि श्रीरामचन्द्रजी वैदिक धर्मकी सुरक्षाके लिये कितने दक्ष थे। श्रीरामचन्द्रजीका संपूर्ण जीवनही आदर्श धार्मिक पुरुष जैसा है। सर्वत्र धर्मका जीवन इसके चरित्रमें है। इसीलिये इसे अवतार कहा है। 'धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि।' (गीता) यह वचन यहां सार्थ हुआ है।

यहाँ अयोध्याकाण्डके उत्तरार्धका निरीक्षण समाप्त हुआ है।